Chapter 5

पंचम अध्याय

महाकवि निराला की काव्य-कला :: भाव-कला

प्राक्कथन :: पिछले अध्याय में काव्य के 'रूप' और 'आशय' तत्व की चर्चा करते समय यह बताने का प्रयत्न किया गया था कि काव्य का वस्तु तत्व या आशय उसके 'रूप' मे ही निहित रहता है. अर्थात रूप और आशय में किसी प्रकार का द्वैत या भिन्नत्व नहीं माना जा सकता. इस प्रकार कला का विभाजन उसकी अखण्डता तथा पूर्णता का विघातक होगा. इसलिए अनेक आधुनिक आलोचकों को इस प्रकार के भेद या विभाजन का विरोध भी करना पडा है.[1] वस्तुत: ध्यान से देखने पर स्पष्ट होगा कि ये दोनों परस्पराश्रित तथा परस्पर संबंधित है. उदाहरणत: किसी महाकाव्य या उपन्यास में कथित घटनाएं 'आशय' का अंग होती है. परन्तु उन्हीं को जब कथावस्तु के रूप में नियोजित (arrange) किया जाता है तो वे 'रूप' का अंग बन जाती है. आशय यह है कि भाव या विचार की स्वयंस्फूर्तता की दृष्टि से रूप और आशय में कोई द्वैत या विरोध नहीं है.[2]

1- Jan Mukařovsky - Introduction to - 'Máchův Máj (Mácha's May) 1928 - p. iv-vi

2- द्रष्टव्य: Langer Susanne K. - Philosophy in a new key - p.121

सफल कलाकृति में आशय का रूप के साथ संपूर्ण विलयन (assimilation) हो जाता है।अत: इस ~~प्रकार~~ प्रकार का भेद कला को क्षति पहुंचाता है।[1]

निरालाजी की काव्य-कला का अध्ययन करते समय उनके काव्य में उक्त वस्तुतत्व या आशय तथा रूप का परस्पर संबंध किस प्रकार स्थापित हुआ है अथवा किस प्रकार उनका परस्पर विलयन हुआ है,अथवा आशय ने किस प्रकार कलात्मक रूप धारण किया है,आदि समस्याओं पर विचार करना आवश्यक है। अतएव प्रस्तुत दो अध्यायों में निरालाजी की काव्य-कला के वस्तुतत्व का रूप तथा कला की अभिव्यंजना का रूप,इन दो दृष्टियों से उनके काव्य की समीक्षा करने का प्रयास किया जायेगा।दूसरे शब्दों में प्रस्तुत दो अध्यायों में क्रमश: वस्तुकला या भाव-कला तथा रूप-कला या कला-शिल्प का, विवेचन होगा।यह विवेचन अध्याय विशेष के विषय को ध्यान में रखकर, उसके उचित मानदंड निश्चित करते हुए किया जायेगा।

प्रस्तुत अध्याय का अध्ययन-क्रम निम्नलिखित रहेगा --

१- भाव-कला ।

२- निराला-काव्यकला के अध्ययन के मानदंड और उनका सैद्धांतिक विवेचन।

३- निराला-काव्य का विकास,और अनुभूति के विषय।

४- निराला-काव्य की प्रतिनिधि अनुभूतियां - स्वरूप,व्याख्या, और सौंदर्य।

५- निराला-काव्य-विकास के सोपान और भाव-सौंदर्य।

६- उपसंहार।

1- Wellek Rene & Warren Austin - Theory of Literature - 1955 - p.252,256

१- भाव-कला :: वस्तुतः कवि, सूक्ष्म निरीक्षण (Observation), स्मृति (Memory) तथा अनुभव के वैविध्य में से सार रूप में गृहीत किये हुए (deduced) व्यक्तिगत विचार, अनुभूति तथा भाव को काव्यात्मक रूप प्रदान करता है। इन व्यक्तिगत विचारों, अनुभूतियों तथा भावों का काव्यात्मक अथवा कलात्मक रूप में संक्रमित होना ही वस्तुकला या भाव-कला है। अतः पाठक या श्रोता कवि के उस भाव का आस्वादन करता है, जिसे कवि ने कलात्मक या सौंदर्यात्मक रूप प्रदान किया है। इस सन्दर्भ में यह प्रश्न उठता है कि कवि व्यक्तिगत भावों को सौन्दर्यात्मक रूप कैसे प्रदान करता है, अथवा दूसरे शब्दों में भाव-सौन्दर्य क्या है ? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि भावों को कलात्मक रूप देते समय कवि जो चमत्कार उत्पन्न करता है, उसीमें सौन्दर्य निहित रहता है। जैसे चित्रकला में विविध रेखाओं के तथा संगीत में विविध स्वरों के विशिष्ट संयोजनों से चमत्कार या सौन्दर्य उत्पन्न होता है, वैसे ही काव्यकला में विविध अनुभूतियों एवं भावों के विशिष्ट संयोजनों (juxtapositions) द्वारा सौन्दर्य उद्घाटित होता है। आशय यह कि काव्य का आस्वाद लेते समय काव्य के विचार, अनुभूति या भाव का वैयक्तिक मनोविज्ञान की दृष्टि से कोई महत्व नहीं हो सकता। वस्तुतः किस क्रम में, अथवा भाव-संयोजन के किस विशिष्ट-क्रम (Pattern) द्वारा सौन्दर्य उद्घाटित हुआ है, यही ज्ञातव्य है। यह क्रम या क्रम-योजना ही भाव-कला है।

उक्त विवेचन के आधार पर निरालाजी की भाव-कला का अध्ययन निम्नलिखित प्रक्रिया द्वारा किया जा सकता है।

२- निराला-काव्यकला के अध्ययन के मानदण्ड और उनका सैद्धान्तिक विवेचन :

२-१ प्रारंभिक कविता से अंत तक समस्त निराला-काव्य में अनुभूति के विविध विषयों का विकासात्मक परिचय।

२-२ उक्त परिचय के आधार पर प्रतिनिधि अनुभूतियों के ~~लविभवाँ~~ विषयों का निम्नलिखित दो दृष्टियों से चयन --

अ- वे प्रतिनिधि विषय जो उनके काव्य में प्रारंभ से अन्त तक प्राप्त होते हैं।

ब- वे प्रतिनिधि विषय जो विशेष अवस्था या काल में ही प्रमुख रहे, तथा बाद में छूट गये।

२-३ निम्नलिखित क्रम-व्यवस्था[१] की दृष्टि से उक्त प्रतिनिधि विषयों की अनुभूतियों का काव्यात्मक या कलात्मक स्वरूप-निर्णय :--

अ- अनुभूतियों का सामान्य सहज क्रम अर्थात् जिस क्रम में ~~अनुभूतियों-का~~ आलंबन की अनुभूति हुई हो उस क्रम में काव्य में अनुभूतियों का नियोजन (arrangement)। इस स्वरूप को क ख ग घ इस रूप में देखा जा सकता है।

ब- अनुभूतियों का कार्य-कारण क्रम, अर्थात् एक अनुभूति दूसरी अनुभूति का कारण हो, इस क्रम में काव्य में नियोजन। इस स्वरूप को क → ख → ग → घ, इस रूप में देखा जा सकता है।

क- अनुभूतियों का संवादी-विवादी क्रम, अर्थात् एक अनुभूति दूसरी अनुभूति से मेल खाती हुई, अथवा विरुद्ध, अथवा तुल्यबल हो, इस क्रम में काव्य में नियोजन। इस स्वरूप को (क२ ख२ ग२ घ२) क$_{१,२}$ ख$_{१,२}$ ग$_{१,२}$ घ$_{१,२}$, इस क्रम रूप में देखा जा सकता है।

२-४ अनुभूति ~~कने~~- के उक्त काव्यात्मक या कलात्मक स्वरूप द्वारा व्यंजित भाव के निम्नलिखित रूपों का सौंदर्योद्घाटन --

---

१- मर्ढेकर बा. सी. - सौंदर्य आणि साहित्य - पृ-

(१) स्वतंत्र भाव,(२) मिश्र भाव,(३) संवादी-विवादी भाव
उक्त संपूर्ण प्रक्रिया का विस्तारपूर्वक विवेचन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है।

३- निराला-काव्य का विकास और अनुभूति के विषय :--

३-० अध्ययन की सुकरता की दृष्टि से निरालाजी की काव्यानुभूति के विषयों को विभिन्न खण्डों में विभाजित करना आवश्यक है। अतः यह विभाजन निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर किया जा सकता है :--

३-१ भारतीय राजनीतिक-सामाजिक परिवेश :-

बीसवीं शताब्दी में भारत के सांस्कृतिक पुनरुत्थान में बंगाल का योगदान महत्वपूर्ण है। आध्यात्मिक,सामाजिक,धार्मिक तथा राजनीतिक जागरण का कार्य इस शताब्दी के आरम्भ में बंगाल में अत्यन्त व्यापक रूप से हुआ। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रारंभ यदि १६०५ से माना जाय[1] तो,१६०५ से १६३० तक बंगाल में राजनीतिक उथलपुथल विशेष रूप से देखा जा सकता है[2]। निरालाजी इस काल के साक्षी रह चुके थे।

१६३०-३३ से प्रारंभ होने वाला असहयोग आन्दोलन समूचे भारत में फैला तथा १६४२ से अधिक प्रबल ~~हलेत~~ हुआ। अंत में १६४७ में भारत स्वतंत्र हुआ। १६३६ में दूसरे विश्वयुद्ध के प्रत्याघात भारतीय राजनीति के क्षेत्र में हुए। इस काल में राजनीतिक स्वतंत्रता की चेतना भारत के गांवों में भी फैल चुकी थी। भारतीय

१- भटनागर,रामरतन,निराला और नवजागरण,पृष्ठ १२०,१६६५ ई०

२- वही,पृष्ठ १०७

समाज एक क्रांतिकारी और संक्रमणशील काल से गुजर रहा था। यह निरालाजी के भ्रमणकारी (   ) जीवन का काल था।

१९५० से भारत सार्वभौम प्रजासत्ताक राज्य घोषित हुआ। देश में स्थिरता तथा प्रगति के लक्षण दिखाई देने लगे। इस काल में निरालाजी का शरीर रोग एवं जरा से जर्जरित हो रहा था। उनकी प्रवृत्तियाँ भी धीरे धीरे कम होती जा रही थीं। वे प्रयाग में स्थिर हो गये थे।

निरालाजी के जीवन का प्रारंभ सामंतवादी समाज के परिवेश में हुआ। १९२२ तक उस राज्य व्यवस्था तथा समाज में रह कर अंत में उसके विरुद्ध विद्रोह कर वे कलकत्ता आये। एक और विदेशी शासन तथा दूसरी ओर सामंतशाही, इन दो पाटों में पिसते हुए बंगाल के दलित, दरिद्री और दीन जन-जीवन का अनुभव अत्यन्त निकट से निरालाजी को हुआ। इसके अतिरिक्त तत्कालीन भारत के मध्यवर्गीय समाज की रूढ़िवादिता, अंधश्रद्धा, ढोंग, गुरुडम आदि का भी उन्हें परिचय था।

रूस में राजनीतिक क्रांति जिस वैचारिक क्रांति के आधार पर हुई थी, उससे भारतीय समाज और विशेषकर शिक्षित समाज प्रभावित हुआ। दलितवर्ग के साथ ही नारी-उत्थान का कार्य भी भारत के अनेक समाज सुधारकों ने प्रारंभ किया। भारत की ~~सम्मक~~ राजनीतिक पराधीनता के साथ सामाजिक तथा आर्थिक विषमता के प्रति समाज के विविध स्तरों में जागृति आने लगी।

१९५० में सार्वभौम संवैधानिक संसदीय प्रजासत्ताक भारत की स्थापना होते ही विदेशों से भारत का संपर्क बढ़ा और वैचारिक आदान-प्रदान का मार्ग खुला। नई राज्य व्यवस्था के परिवेश में भारतीय समाज अपने आप को ढालने लगा।

३-२ साहित्यिक परिवेश :--

१९०० ई० में 'सरस्वती' के उदय के साथ ही द्विवेदी-युग का प्रारंभ माना जा सकता है। ब्रजभाषा काव्य की परम्परागत अनुभूति और अभिव्यक्ति से हटकर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपने अन्य सहयोगियों के साथ उस साहित्यिक चेतना को विकसित करने का प्रयास किया जिसे भारतेन्दु ने जन्म दिया था। द्विवेदीजी ने एक ओर विचारों के क्षेत्र में नई तथा बहुमुखी सामग्री एकत्रित की तथा दूसरी ओर हिन्दी के लिए खड़ीबोली के रूप में एक नया प्रतिमान प्रस्तुत किया।[१] परन्तु इस युग में विचार का ही क्षेत्र विकसित हुआ सौन्दर्य का नहीं। इस काल की अनुभूति और अभिव्यक्ति वैचारिक अधिक थी, काव्यात्मक कम। इस काल में ही बंगला साहित्य की ख्याति बढ़ने लगी थी, और रवीन्द्रनाथ भारत तथा विश्व के साहित्य में छाने लगे थे।

१९१३ से १९२० के काल में हिन्दी जगत ने एक नयी अनुभूति और अभिव्यक्ति का निर्माण होते हुए देखा।[२] १९२० के लगभग[३] काव्य को सौन्दर्य प्रदान करने के लिए नवयुवक कवियों के प्रयास आरंभ हुए। प्रसाद इस प्रयास के जिसे छायावाद कहा गया है, प्रथम सर्वमान्य प्रणेता माने जाते हैं।[४] यद्यपि १९१६ में निरालाजी 'जुही की कली' का निर्माण कर चुके थे।

१९३५-३६ से भारत में मार्क्स के क्रांतिकारी समाजवादी विचारों का साहित्यिक जगत में स्वागत हुआ। १९३६ में प्रेमचन्दजी की अध्यक्षता में प्रगतिशील साहित्य संघ की स्थापना हुई और प्रसादजी के शब्दों में, पहली बार

१- वाजपेयी, आचार्य नन्ददुलारे, आधुनिक साहित्य, पृष्ठ १३

२- 'अवन्तिका' जनवरी, १९५४, पृष्ठ १९०-९१, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी

३- वही, पृष्ठ ९०-९१

४- 'शरण' दीनानाथ - छायावाद विश्लेषण और मूल्यांकन - पृ. १७४

लघुता की ओर दृष्टिपात हुआ।[1]

लगभग १९५० से उक्त विचारधारा का जोर हिन्दीमें घट गया और आधुनिकतम भाव,भाषा तथा शैली का निर्माण प्रगतिवादी काव्य रचना द्वारा हुआ।

उपरोक्त तीन आयामों को दृष्टि में रखते हुए निरालाजी की काव्यानुभूतियों के विषयों को निम्नलिखित तीन कालखण्डों में बांटा जा सकता है :--

(१) १९१६-१९३८ : बंगाल की भूमि पर इस काल में असहयोग आन्दोलन तथा अन्य राजनीतिक उथलपुथल प्रबल रूप से हो रहे थे।पराधीन भारत की दलित प्रजा का उद्धार करने के हेतु समाज सुधारकों ने भी कमर कस ली थी।हिन्दी साहित्य के प्रांगण में छायावाद युग का अभ्युदय तथा विकास हो रहा था।ऐसे परिवेश में निरालाजी भी नयी साहित्यिक-चेतना के स्फुलिंग लिए क्रांति मचाने तत्पर थे।यद्यपि १९१८ में पत्नी तथा आप्तजनों के चिर वियोग के कारण तथा पारिवारिक उत्तरदायित्व एवं साधारण आर्थिक आर्थिक स्थिति के फलस्वरूप निरालाजी मानसिक दृष्टि से अशांत रहे परन्तु फिर भी यह काल शारीरिक तथा आर्थिक दृष्टि से अपेक्षाकृत स्थिरता का काल था।बंगाल ही निरालाजी का प्रमुख रूप से कार्य-क्षेत्र रहा,और विशेषकर कलकत्ता में रहकर ही "समन्वय" तथा "मतवाला" के संपादन कार्य द्वारा उन्होंने साहित्य-साधना आरंभ की।उक्त परिवेश में निरालाजी ने परिमल (१९३५) गीतिका (१९३६) अनामिका (द्वितीय १९३७) तथा तुलसीदास (१९३८) रचनाओं का सृजन किया।इनमें "परिमल" इस काल की ही नहीं अपितु १९२० से १९४० तक समस्त छायावादी काव्य की प्रतिनिधि रचना मानी जा सकती है।[2] अत: निरालाजी का यह जीवन-समय परिमल-काल कहा जा सकता है।

१- प्रसाद,जयशंकर,काव्य और कला तथा अन्य निबंध,पृष्ठ १२०

२- वर्मा,धनन्जय,निराला : काव्य और व्यक्तित्व,पृष्ठ ११५,२३४;१९६०

(२) १९४२-१९४६ : (अ) १९३९ में दूसरा विश्वयुद्ध प्रारंभ हुआ।

(आ) १९४२ में असहयोग आन्दोलन अधिक तीव्र हुआ तथा सारा भारत अंग्रेजी शासन के विरुद्ध स्वतन्त्रता का अधिकार प्राप्त करने कटिबद्ध हुआ।अंग्रेजी सरकार ने भी अपनी दमन-वृत्ति को अधिक वेग दिया।

(इ) विदेशों की राजनैतिक तथा सामाजिक क्रांतियों के भारत के शिक्षित समाज को अपने अधिकारों के प्रति सचेत तथा सक्रिय कर दिया।

(ई) १९३६ में प्रगतिशील संघ की स्थापना हुई। तथा मार्क्स के समाजवादी विचारों ने भारतीय साहित्य को प्रभावित किया।हिन्दी में प्रगतिवाद का प्रारंभ हुआ।

(उ) १९३५ में पुत्री की मृत्यु के कारण निरालाजी मानसिक रूप से अतयंत अस्वस्थ हो गये थे।साहित्यिक और सामाजिक विरोध,तथा आर्थिक संकटों ने उनकी अस्वस्थता में वृद्धि की तथा शरीर की रुग्णता को भी बढ़ाया। निरालाजी कभी लखनऊ कभी प्रयाग रहे।जीवन समग्र रूप से अस्थिर तथा विषाद-मय रहा।इस परिवेश में कुकरमुत्ता (१९४२),अणिमा १९४३),बेला (१९४३) नये पत्ते (१९४६) रचनाओं का सृजन हुआ।कुकुरमुत्ता इस काल की प्रतिनीधि रचना मानी जा सकती है।अत: यह सभय कुकुरमुत्ता काल कहा जा सकता है।

(३) १९५० से लगभग अंतिम समय तक : (अ) १९४७ में भारत स्वतन्त्र हुआ। १९५० में भारत सार्वभौम प्रजासत्ताक राज्य घोषित हुआ।देश में स्थिरता आई।

(आ) भारतीय समाज को विकसित होने का अवसर मिला। जनता को संविधान द्वारा मूलभूत अधिकार प्राप्त हुए।

(इ) प्रगतिवाद का प्रभाव कम होकर 'तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ हिन्दी में प्रयोगवादी काव्य रचना का प्रारंभ हुआ।

(ई) निरालाजी प्रयाग में स्थिर हो गये थे।वे मानसिक तथा शारीरिक दोनों दृष्टियों से शिथिल हो गये थे।वस्तुत: वे इस काल में आर्थिक ,सामाजिक या

साहित्यिक संघर्षों से उदासीन हो गये थे. वैसे इस काल में उन्हें साहित्यिक प्रतिष्ठा सर्वाधिक रूप में प्राप्त होने लगी थी. परंतु उनकी समस्त वृत्तियाँ संकुचित हो कर ईश्वर भक्ति में संचित हो गई थीं. ऐसे परिवेश में अर्चना, आराधना, गीतिगुंज की सृष्टि हुई. अर्चना इस काल की प्रतिनिधि रचना मानी जा सकती है. अत: इस काल को 'अर्चना काल' कहा जा सकता है.

निराला-काव्य को तीन आयामों में बाँट कर देखने का प्रयास अन्य विद्वानों भी किया है.[१]

उक्त तीन काल-खण्डों की काव्य-रचनाएं निम्नलिखित है:

(१) १९१६ से १९३९ ई. काव्य-रचनाएं :-
परिमल(१९३०) गीतिका(१९३६)अनामिका-द्वितीय-(१९३७) तुलसीदास (१९३८)

(२) १९४२ से १९४६ ई. : काव्य-रचनाएं :-
कुकुरमुत्ता(१९४२) अणिमा(१९४३) बेला(१९४३) नयेपत्ते(१९४६)

(३) १९५० से लगभग १९६० ई. तक : काव्य-रचनाएं :-
अर्चना(१९५०) आराधना(१९५३) गीतगुंज(१९५३-५६)

उक्त कालखण्डों रचित रचनाओं के विकास को ध्यान में रखते हुए निरालाजी के काव्य की अनुभूतियों के विकासात्मक स्वरूप संलग्न तालिका व्दारा समझा जा सकता है.

उक्त तालिका में निर्देशित कालखण्डों में रचित रचनाओं को ध्यान में रखते हुए निरालाजी के काव्य विषयों का विकासात्मक अध्ययन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है :-

३-४ १९१६ से १९३९ ई. :: द्विवेदीयुगीन काव्य-रचनाओं की काव्यात्मकता को प्रकाशमें लानेवाली छायावादी - या स्वच्छंदता -

---

१ - भटनागर, डा. रामरतन, निराला और नवजागरण, पृ. २७३-२७५.

वादी काव्य-रचनाओं की दृष्टि से इस कालसीमा में रचित निरालाजी की रचनाएं अग्रगण्य मानी जा सकती हैं। द्विवेदी-युगीन काव्य के विषय न केवल सीमित और साथ साथ एकरूप (Monotonous) बन गये थे अपितु उन विषयों की तथाकथित काव्य रूप में अभिव्यक्ति भी नीरस और निर्बल बन गयी थी। इसके विपरीत इस काल की निरालजी की रचनाओं में विषय वैविध्य के साथ एक ही विषय की विविध अनुभूतियों के स्तर या विविध छायातप (Shades) भी मिलते हैं। आशय यह कि उनकी काव्यानुभूति के विषय असामान्य अर्थवत्ता लिये होते हैं। अतएव इस काल में जिन विषयों की काव्यात्मक अनुभूति निरालाजी ने व्यक्त की है, लगभग उन सभी विषयों की व्याप्ति निरालाजी के परवर्ती दो कालखण्डों के काव्य में भी देखी जा सकती है। यद्यपि कुछ नये विषयों का भी प्रवेश हुआ है परन्तु वे उसी विशिष्ट काल में ही प्रमुख रह पाये हैं।

इस कालखण्ड की काव्यानुभूतियों के विषयों का परिचय प्रथम तीन संग्रहों को लक्ष्य में रखकर निम्नलिखित रूप में दिया जा सकता है।

<u>प्रेम</u> : इस विषय से तात्पर्य है स्त्री पुरुष का रति भाव। इसके अंतर्गत संयोग, वियोग की श्रृंगारपरक अनुभूतियां व्यक्त की गयी हैं। यह विषय इस काल में सब से प्रमुख कहा जा सकता है, क्योंकि परिमल, गीतिका तथा अनामिका की कुल रचनाओं में से लगभग ४० रचनाएं प्रेम से संबंधित देखी जा सकती हैं। इस विषय की अनुभूतियां प्राय: निम्नलिखित प्रकारों में अभिव्यक्त हुई हैं :--

(अ) प्रकृति के माध्यम से - यथा, जुही की कली, शेफालिका[१], 'अपने सुख स्वप्न से खिली', 'सोचती अपलक आप खड़ी'[२]।

१- निराला, परिमल, पृष्ठ १६१, १६६

२- निराला, गीतिका, पृष्ठ ६, ४०

(आ) विशुद्ध संयोग श्रृंगार के रूप में- यथा, `नयनों के डोरे लाल`[१] आदि।

(इ) विशुद्ध वियोग श्रृंगार के रूप में- यथा, `प्रिया के प्रति`, `विफल वासना`[२], `तुम छोड़ गये द्वार`, `कब से मैं पथ देख रही प्रिय`, `प्राण धन को स्मरण करते`[३], आदि।

(ई) अनुभावों के रूप में-`गीत`[४], `चुम्बन`[५], `मौन रही हार`[६], `स्पर्श से लाज लगी`[७], आदि। प्रेम के अन्य रूप भी दृष्टव्य हैं- यथा, `मौन`, `निवेदन` आदि। प्रेम संबंधी रचनाओं का गीतिका में आधिक्य मिलता है।

(२) भक्ति या प्रपत्ति : इस सविषय के अंतर्गत भक्ति, विनय, समर्पण, आदि की अनुभूतियां देखी जा सकती हैं। प्रेम के पश्चात् इस काल-खण्ड में यही विषय प्रमुख रूप से देखा जा सकता है। उक्त तीन संग्रहों की कुल रचनाओं में से लगभग ३४ रचनाएं इसी विषय से संबंधित हैं।

इस विषय की अनुभूतियां प्राय: निम्नलिखित प्रकारों में अभिव्यक्त हुई हैं :--

(अ) वे रचनाएं जिनमें विशेष रूप से देवी के प्रति, अन्यथा ईश्वर के प्रति दीनता, असहायता, याचना, समर्पण आदि ~~अर्क~~ भावों से प्रार्थना की गई है -

१- निराला, गीतिका, पृष्ठ ४६

२- निराला, परिमल, पृष्ठ ६३, १६३

३- निराला, गीतिका, पृष्ठ २५, ४१, ५२

४- निराला, परिमल, पृष्ठ १०७

५- निराला, अनामिका, पृष्ठ ४७

६- निराला, गीतिका, पृष्ठ ८, ३३

७- निराला, परिमल, पृष्ठ ~~इ~~ २६, ३२

यथा 'सेवा', 'प्रार्थना', 'पारस', 'क्या दूं', 'मेरी छबि ला दो',[1] 'वर दे,वीणा वादिनि', 'मन चंचल न करो', 'नर जीवन के स्वार्थ सकल', 'मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा?' 'प्रात तव द्वार पर',[2][3] आदि।

(आ) वे रचनाएं जिनमें देवी का विशेष रूप से स्तवन किया गया है- यथा, 'आओ मधुर-सरण मानसि,मन', 'सकल गुणों की खान,प्राण तुम', 'बंदूं पद सुन्दर तव',[4] 'वीणा वादिनि',[5] आदि।

(इ) वे रचनाएं जिनमें देवी या ईश्वर के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की हो- यथा,[6] 'भर देते हो', 'प्रतिक्षण भरी मोह-मलिन मन', 'तुम्हीं गाती हो अपना गान',[7] आदि।भक्तिपरक रचनाएं 'गीतिका' में अधिक हैं।

(३) प्रकृति : छायावादी काल के प्रमुख विषयों में से इस विषय का स्थान, उक्त कालखण्ड में तीसरा माना जा सकता है।उपरोक्त तीन संग्रहों की कुल रचनाओं में से लगभग २५ रचनाएं प्रकृति के विविध रूपों से संबंधित हैं।प्रकृति के प्राय: जो रूप अनुभूति का विषय बने हैं,वे इस प्रकार हैं :--

---

१- निराला,परिमल,पृष्ठ ३०,३४,७०,६५

२- निराला,अनामिका,पृष्ठ १६३

३- निराला,गीतिका,पृष्ठ३,१८,२२,४५,१००

४- वही,५५,७६,८३

५- निराला,अनामिका,पृष्ठ ३३

६- निराला,परिमल,पृष्ठ ११७

७- निराला,गीतिका,पृष्ठ ४७,४६

वसन्त :वसंत को ऋतुपति कहकर निरालाजी ने इस[1] काल में विशेष वर्णन किया है- यथा, `गीत`, `वासन्ती`,[2] `वसन्त समीर`, `सखि वसन्त आया`, `रंग गई पग-पग,धन्य धरा`, आदि।अनामिका में `वसन्त` पर एक भी कविता नहीं मिलती।

बादल : बादलों के प्रति निरालाजी का आकर्षण विशेष रहा है।इस काल खण्ड में विशुद्ध प्रकृति के अंग के रूप में बादल पर रचित निम्नलिखित काव्य उन रचनाओं से भिन्न हैं,जिनमें बादल प्रतीकके रूप[3] में रखे गये हैं।यथा, `विनय` तथा `उत्साह` में बादलों से प्रार्थना की गई है।

वर्षा : बादल से ही संबंधित वर्षा का वर्णन भी निरालाजी ने किया है- यथा, `गीत`,[4] `बादल में आये जीवन-घन`, `मेघ के घन केश`,[5] आदि।

इसके अतिरिक्त जिन अन्य रूपों[6] की[7] निरालाजी ने काव्याभिव्यक्ति की है,वे इस प्रकार[8] हैं:--[9] शिशिर,शरद, (जिसे निरालाजी ने ऋतुरानी विशेषण दिया है),ग्रीष्म, संध्या, आदि।

१- निरालाजी,परिमल,पृष्ठ ४३,७४,८९

२- निराला,गीतिका,पृष्ठ ५,५१

३- निराला,अनामिका,पृष्ठ ८१,८२

४- निराला,परिमल,पृष्ठ १०२

५- निराला,गीतिका,पृष्ठ १५,५०

६- वही,१०,८८

७- निराला,परिमल,पृष्ठ १३८

८- निराला,अनामिका,पष्ठ ५२

९- निराला,गीतिका,पृष्ठ ७८ ;परिमल,पृष्ठ १३५

इसके अतिरिक्त प्रकृति का अन्य रूपों में यथा,पृष्ठभूमि, आलंबन,[1] उद्दीपन भी वर्णन किया है।

(४) जीवन : इस विषय के अंतर्गत निरालाजी कक उत्साह या आशा तथा खेद या विषादात्मक मन:स्थिति एवं आत्मनिवेदन देखा जा सकता है।इस कालखण्ड में यह विषय भी तीसरे स्थान पर माना जा सकता है।तीनों संग्रहों की कुल रचनाओं में से लगभग २५ रचनाएं इस विषय से संबंधित देखी जा सकती हैं।जीवन के विषय में निरालाजी की निम्नलिखित अनुभूतियां मिलती है :--

(अ) वे रचनाएं जिनमें उत्साह या आशा की अभिव्यक्ति हुई है।यथा,`युक्ति`,[2] `ध्वनि`,[3] `आवेदन`,`उत्साह`,[2] `जीवन की तरी खोल दे रे`,`छंद की बाढ़,वृष्टि अनुराग`,[4] `वह कितना सुख जब मैं केवल`,`गर्ज्जित जीवन भरना`,[5] आदि।

(आ) वे रचनाएं जिनमें विषाद,खेद,संताप या अनुताप की व्यंजना हुई हैं-- `पतनोन्मुख`,`वृत्ति`,[5] `मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा`,[6] `निश-दिन तन धूलि में मलिन`,`मैं रहूंगा न गृह के भीतर`, `सच है`,[7] `सन्तप्त`,`अनुताप`,`हताश`, हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र`,`उक्ति`, आदि।उक्त प्रकार की अनुभूतियों की संख्या अनामिका में सर्वाधिक मिलती है।

१- निराला,अनामिका,पृष्ठ २२,८३

२- निराला,परिमल,पृष्ठ ६२,१२०

३- निराला,अनामिका,पृष्ठ ७८,८२

४- निराला,गीतिका,पृष्ठ ५७,८५,६५,१०५

५- निराला,परिमल,पृष्ठ ४२,६८

६- निराला,गीतिका,पृष्ठ ४५,५६,६३

७- निराला,अनामिका,पृष्ठ ४४,४५,४८,६२,११४,१६०

(इ) वे रचनाएं जिनमें विषाद और उत्साह दोनों की मिश्र अनुभूति मिलती है- 'बन बेला',[1] 'सराज स्मृति,' तथा 'राम की शक्ति पूजा' में उक्त तीनों अनुभूतियां व्यक्त हुई हैं।

(५) मृत्यु : तीनों संग्रहों की कुल रचनाओं में से लगभग १६ रचनाएं इस विषय से संबंधित देखी जा सक्ती हैं।इस विषय पर निरालाजी की निम्नलिखित अभिव्यक्तियां देखी जा सक्ती हैं :--

(अ) मां के रूप में मृत्यु की अनुभूति- यथा, 'आवाहन',[2] 'नाचे उस पार श्यामा'[3] (स्वामी विवेकानन्दजी की कविता का अनुवाद)।

(आ)अन्य विविध रूपों में मृत्यु की अनुभूति- यथा, 'परलोक', 'कवि',[4] 'तुम्हारे सुन्दरी,कर सुन्दर',[5] 'मैं रहूंगा न गृह के भीतर',[6] 'प्याला', 'मरण दृष्य', आदि। ये अनुभूति (तीनों संग्रहों में) इस कालखण्ड में समान मात्रा में मिलती है।

(६) स्मृति : मृत्यु के पश्चात् प्रमुखता की दृष्टि से 'स्मृति' का स्थान आता है।इस विषय के अंतर्गत कुल रचनाओं में से लगभग १५ रचनाएं देखी जा सक्ती हैं।यह स्मृति निम्नलिखित रूपों में व्यक्त हुई है।--

(अ)वे रचनाएं जिनमें दिवंगत पत्नी की स्मृति ध्वनित होती है।उदाहरणार्थ-

---

१- निराला,अनामिका,पृष्ठ ८३

२- निराला,परिमल,पृष्ठ १५०

३- निराला,अनामिका,पृष्ठ १०४

४- निराला,परिमल,पृष्ठ ६३,२०७

५- निराला,गीतिका,पृष्ठ ७,६३

६- निराला,अनामिका,पृष्ठ ६३,१३५

'प्रिया के प्रति', 'उसकी स्मृति', 'कविता', [1] 'भावना रंग दी तुमने, प्राण', [2] 'प्रिया से', 'सच है', 'रेखा' [3] आदि।

(आ) अन्य विविध रूपों में स्मृति की अनुभूति की अभिव्यंजना 'युक्ति', 'स्मृति', 'स्वप्न-स्मृति', 'स्मृति-चुंबन', [4] 'कहाँ उन नयनों की मुसकान', [5] 'तुम्हें ही चाहा सौ-सौ बार', [6] 'सराज-स्मृति', आदि।

(७) <u>करुणा</u> : सामाजिक दृष्टि से दीन, दुखी, दलित तथा नारी के प्रति करुणा की अनुभूति व्यक्त करने वाली लगभग १५ रचनाएं देखी जा सकती हैं। [7] यथा, 'अधिवास', 'विधवा', 'भिक्षुक', 'दीन', 'कण', 'छोड़ दो, जीवन यों न मलो', [8] 'दान', 'तोड़ती पत्थर', [9] आदि। परिमल की रचनाओं में करुणा की अनुभूति अधिक मिलती है।

(८) <u>जागरण</u> : इस विषय की लगभग १२ रचनाएं उक्त संग्रहों में देखी जा सकती हैं। जिन रूपों में उक्त विषय से संबंधित अनुभूति व्यक्त हुई है, वे इस प्रकार हैं :--

---

१- निराला, परिमल, पृष्ठ ६४, १२२, १३१
२- निराला, गीतिका, पृष्ठ ७६
३- निराला, अनामिका, पृष्ठ ४२, ४४, ६६
४- निराला, परिमल, पृष्ठ ६३, १०८, १५८, २११
५- निराला, गीतिका, पृष्ठ ३१, ६६
६- निराला, अनामिका, पृष्ठ ११७
७- निराला, परिमल, पृष्ठ १२४, १२६, १३३, १४४, १७१
८- निराला, गीतिका, पृष्ठ १२
९- निराला, अनामिका, पृष्ठ २२, ७६

(अ) कलात्मक या विशुद्ध काव्यात्मक अनुभूति की व्यंजना जिन रचनाओं में हुई है- `प्रभाती`, `जुही की कली`, `जागृति में सुप्ति थी`, `जागो फिर एक बार(१)`[1] `खुलती मेरी शेफाली`[2] आदि।

(आ) वे रचनाएं जिनमें राष्ट्रीय - चेतना या जन-जागरण संबंधित अनुभूति व्यक्त हुई है- `जागो फिर एक बार(२)`, `महाराज शिवाजी का पत्र`, `फूटो फिर, फिर से तुम`,[3] [4] आदि।

(इ) वे रचनाएं जिनमें विशुद्ध दार्शनिक दृष्टि से आत्म-जागृति की अनुभूति व्यक्त हुई है- `जागो`, `जागरण`,[5] आदि। इस विषय पर परिमल में विशेष अभिव्यक्ति हुई है।

(९) विद्रोह और विप्लव : कुल रचनाओं में से लगभग ८ रचनाएं इस विषय पर देखी जा सकती हैं- `आवाहन`, `बादल राग`, (१) (२)(३)[6] आदि। `घन गर्जन से भर दो वन`, `तृष्णाशा-भरे भाषा अमृत-निर्झर`,[7] `उद्बोधन`, `मुक्ति`,[8] आदि।

(१०) अतीत : कुल रचनाओं में से लगभग ५ रचनाएं इस विषय पर देखी जा सकती हैं। भारत की भूतकालीन संस्कृति, ऐश्वर्य या वैभव की स्मृति दिलाते हुए प्रेरणा की अनुभूति उक्त विषय के अंतर्गत देखी जा सकती है- यथा,

---

१- निराला, परिमल, पृष्ठ ३८, १६१, १६४, १६८

२- निराला, गीतिका, पृष्ठ १०६

३- निराला, परिमल, पृष्ठ २०२ २१५

४- निराला, गीतिका, पृष्ठ ७०

५- निराला, परिमल, पृष्ठ ८७, २६०

६- निराला, परिमल, पृष्ठ १५०, १७५, १७७, १८६

७- निराला, गीतिका, पृष्ठ ५६, ६४

८- निराला, अनामिका, पृष्ठ ६७, १३७

`यमुना के प्रति`, `तरंगों के प्रति`, [1] `खण्डहर के प्रति`, `यहीं`, `दिल्ली`, [2] आदि।

शेष विषय जो उक्त विषयों की तुलना में संख्या में अल्प हैं, वे इस प्रकार हैं :--

(११) नूतन : जीर्ण-शीर्ण, प्राचीन, रूढ़िगत मूल्यों के स्थान पर नवीन मूल्यों के आग्रह की अनुभूति इस विषय के अंतर्गत देखी जा सकती है-- यथा, `स्वागत`, [3] `वर दे, वीणा वादिनि वर दे`, `जला दे जीर्ण-शीर्ण प्राचीन`, [4] `मित्र के प्रति`, [5] आदि।

(१२) भारत : भारत के प्रति श्रद्धा तथा राष्ट्रभक्ति की अनुभूति इस विषय से संबंधित रचनाओं में व्यक्त हुई है-- यथा, `जागो, जीवन-घनि के`, `भारति जय, विजय कर`, [6] आदि।

(१३) एकान्त : जिस संघर्ष, विरोध, वियोग, वेदना आदि का सामना निराला जी को करना पड़ा उससे उद्भूत अकेलेपन की अनुभूति इस विषय के अंतर्गत देखी जा सकती है-- `वृत्ति`, [7] `ठूंठ`, [8] आदि।

उक्त विषयों के अतिरिक्त जिन अन्य विषयों पर निरालाजी की भावा-

१- निराला, परिमल, पृष्ठ ४५, ८०

२- निराला, अनामिका, पृष्ठ २६, ३७, ५८

३- निराला, परिमल, पृष्ठ ११८

४- निराला, गीतिका, पृष्ठ ३, ३६

५- निराला, अनामिका, १०

६- निराला, गीतिका, पृष्ठ १७, ७३

७- निराला, परिमल, पृष्ठ ६८

८- निराला, अनामिका, पृष्ठ १३६

मिव्यक्ति आधारित हैं,वे निम्नलिखित हैं :--

(अ) पौराणिक प्रसंग- `पंचवटी प्रसंग`[१] `राम की शक्ति पूजा`[२] आदि।

(आ) शरीर-सौन्दर्य - `पंचवटी प्रसंग(३)`[३] `तट पर`[४] आदि।

(इ) शरीर का अंग - नयन :- `नयन`[५] `दृगों की कलियां नवल खुली`[६] `अपराजिता`, `वे किसान की नई बहू की आंखें`[७] आदि।

(ई) कवि -`कवि`[८] `रे अपलक मन`[९] आदि।

(उ) कविता -`कविता`[१०] `कल्पना,के कानन की रानी`[११] `प्रगल्भ प्रेम`[१२] आदि।

उपरोक्त तीन संग्रहों के अतिरिक्त इस कालखण्ड की अंतिम रचना तुलसी-दास (१९३८) है।वस्तुत: इस काल में जिन विषयों की अनुभूति निरालाजी द्वारा मुक्तक के रूप में अभिव्यक्त हुई,लगभग वे ही अनुभूतियां `तुलसीदास`

१- निराला,परिमल,पृष्ठ २३७-२५६

२- निराला,अनामिका,पृष्ठ १४८

३- निराला,परिमल,पृष्ठ २४६

४- निराला,अनामिका,पृष्ठ ४९

५- निराला,परिमल,पृष्ठ ७८

६- निराला,गीतिका,पृष्ठ १६

७- निराला,अनामिका,पृष्ठ १४३,१४६

८- निराला,परिमल,पृष्ठ २०६

९- निराला,गीतिका,पृष्ठ ७४

१०- निराला,परिमल,पृष्ठ १३१

११- निराला,गीतिका,पृष्ठ २६

१२- निराला,अनामिका,पृष्ठ ३४

प्रबन्धात्मक रचना के अंतर्गत हुई है। `तुलसीदास`[१] काव्य के सृजन में निरालाजी ने जो अथाह परिश्रम-युक्त कवि-कर्म निभाया उसका परिणाम है कि वह एक प्रौढ़-प्रतिभाशाली महाकवि की महाकाव्योचित गरिमा से युक्त प्रबन्ध-काव्य सिद्ध होता है।सहज,परिमार्जित औसुष्ठु रूप में इस कालखण्ड की अनुभूतियों की चरम परिणति `तुलसीदास` में निम्नलिखित विषयों के अंतर्गत अभिव्यक्त अनुभूतियाँ में देखी जा सकती है--

प्रकृति,[२] प्रेम,[३] जागरण,[४] करुणा,[५] अतीत,[६] भारत,[७] क्रांति,[८] नयन,[९] जीवन (उत्साह),[१०] समाज।[११]

३-५ १९४२-१९४६

१९३८ के पश्चात् १९४२ तक निरालाजी ने जो गद्य-साहित्य निर्माण किया है,वह उनके विषय-विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।इस काल में उनकी

१- भटनागर,डा० रामरतन,निराला और नवजागरण,पृष्ठ १४६

२- निराला,तुलसीदास,छन्द ४१,४७,७०,७४

३- वही,छन्द ५८,७१,७२,७३

४- वही,छन्द ८६,९३

५- वही,छन्द २८-३०

६- वही,छन्द ४-६,७५

७- वही,छन्द १-३,१०

८- वही,छन्द ३६,६४-६६

९- वही,छन्द ४९,५०,५५

१०- वही,छन्द ३५

११- वही,छन्द ९,२५,२७

कृतियां -`कुल्लीभाट`(१६३६) और `बिल्लेसुर बकरिहा`(१६४२) उल्लेखनीय हैं क्योंकि गद्य की ये रचनाएं निरालाजी की अनुभूतियों के उन विषयों का स्पष्टीकरण देती हैं, जिनका प्रवेश प्रथम बार इस कालखण्ड में हुआ है।

आशय यह कि इस कालखण्ड में यद्यपि प्रथम कालखण्ड में निर्देशित विषय प्राप्त होते है परन्तु कुछ नवीन विषयों को भी देखा जा सकता है।

कुकुरमुत्ता : इस रचना के क्रांतिकारी सिद्ध होने का प्रमाण यही है कि निरालाजी की समस्त रचनाओं में यह रचना बहुचर्चित रही है। ?

इस रचना में प्रथम बार समाज तथा सभ्यता की विकृतियों एवं विषमताओं के प्रति निरालाजी की वे अनुभूतियां खुलकर व्यक्त हुई हैं जो इससे पूर्व प्रथम कालखण्ड में करुणा के अंतर्गत प्रच्छन्न रूप में विद्यमान रहीं। ये विषय तथा इन विकारों के प्रति निरालाजी की व्यंग तथा परिहासपूर्ण अनुभूति इस कालखण्ड की अन्य रचनाओं में तथा उसके बाद अगले कालखण्ड में भी देखी जा सकती हैं। यह रचना निरालाजी को अपने युग का महान व्यंगकार कवि प्रमाणित करती है।

इस कालखण्ड की काव्यानुभूतियों के विषयों का परिचय निम्नलिखित रूप में दिया जा सकता है--

समाज : पराधीन भारत के दलित समाज की विषमता और विकृति, आशा और निराशा व्यक्त करने वाली अनुभूतियां निम्नलिखित रचनाओं में देखी जा सकती हैं। इस कालखण्ड में यह विषय सब से प्रमुख कहा जा सकता है।

`यह है बाजार`, `मेरे घर के पश्चिम की ओर रहती है`, `सड़क के किनारे`, `चूंकि यहां दाना है`, `भेद कुल खुल जाय वह`, `जल्द जल्द पैर बढ़ाओ, आओ आओ`,[2]

१- निराला, अणिमा ,पृष्ठ

२- निराला, बेला, पृष्ठ ७५,७८

`थोड़ों के पेट में बहुतों का आना पड़ा`, `तारे गिनते रहे`, `गर्म पकौड़ी`, `प्रेम-संगीत`।[1]

<u>प्रेम</u> : प्रथम कालखण्ड में यह विषय सब से प्रमुख देखा गया था। परन्तु इस कालखण्ड में यह दूसरे स्थान पर दिखाई पड़ता देखा जा सकता है। कुल रचनाओं में से लगभग १६ रचनाएं इस विषय पर देखी जा सकती हैं, जिनमें से अधिकांश `बेला` में हैं। `अणिमा` तथा `नये पत्ते` में यह विषय प्राय: नहीं के बराबर है। इस विषय पर निम्नलिखित रचनाएं दृष्टव्य हैं--

`बातें चली सारी रात तुम्हारी`, `आये पलक पर प्राण कि`, `उनके बाग में बहार देखता चला गया`,[2] `तुम्हें देखा, तुम्हारे स्नेह के नयन देखें`, आदि।

<u>जीवन</u> : इस कालखण्ड में भी यह विषय प्रमुखता की दृष्टि से तीसरे स्थान पर दिखाई पड़ता जा सकता है। कुल रचनाओं में से लगभग १८ रचनाएं इस विषय पर देखी जा सकती हैं। इस विषय पर अधिकांश रचनाएं `बेला` में हैं। `नये पत्ते` में अनुभूति का यह विषय प्राय: नहीं के बराबर है। यहां भी इस विषय पर प्राप्त अनुभूतियों को निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है--

(अ) वे रचनाएं जिनमें आशा या उत्साह की अभिव्यक्ति हुई है-- यथा,[3] `तू कभी न ले दूसरी आड़`, `अगर तू डर से पीछे हट गया तो काम रहने दे`, आदि।

(आ) वे रचनाएं जिनमें विषाद या खेद की अभिव्यक्ति हुई है--[4] `मैं अकेला`, `स्नेह निर्झर बह गया है`, `फूलों के कुल कांटे, दल-बल`, `अशब्द हो गयी वीणा`,

---

१- निराला, नये पत्ते, पृष्ठ २६, ४०, ४४, ४६

२- निराला, बेला, पृष्ठ २५, २६, ३५, ३६

३- निराला, बेला, पृष्ठ ६३, ७३

४- निराला, अणिमा, पृष्ठ २०, ५५

'मुसीबत में कटे हैं दिन', 'मन हमारा भग्न दुख की',[1] आदि।

(इ) वे रचनाएं जिनमें निर्वेद की अनुभूति प्रधान है--'फूल से चुन लिया ज्योति का वर अमर',[2] आदि।

(ई) उत्साह, विषाद का मिश्र रूप--'मन में आये संचित हो कर', 'वही राह देखता हूं',[3] आदि।

भक्ति या प्रपत्ति : प्रथम कालखण्ड में प्रमुखता की दृष्टि से यह विषय दूसरे स्थान पर था परन्तु इस कालखण्ड में यह उतना प्रमुख नहीं है। उक्त विषय संबंधी रचनाओं को निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है--

(अ) प्रार्थना : 'उन चरणों में मुझे दो शरण',[4] 'जीवन-प्रदीप चेतन तुमसे हुआ हमारा', 'जग के, जय के जीवन', 'प्रतिजन को करो सफल', 'आये नत वदन शरण',[5] आदि।

(आ) स्तवन : 'तुम्हीं हो शक्ति समुदय की'[6] आदि।

(इ) कृतज्ञता ज्ञापन : 'मैं बैठा था पथ पर',[7] 'नाथ तुमने गहा हाथ वीणा बजी',[8] आदि।

१- निराला, बेला, पृष्ठ २६, ३४, ६६, १०३

२- वही, पृष्ठ ४७, ५६

३- वही, पृष्ठ ४७, ६५

४- निराला, अणिमा, पृष्ठ

५- निराला, बेला, पृष्ठ ४२, ८०, ८१, ८६

६- निराला, अणिमा, पृष्ठ

७- वही, पृष्ठ

८- निराला, बेला, पृष्ठ २३

'नये पत्ते' में उक्त विषय की प्रायः एक ही रचना मिलती है--'काली माता', जो निरालाजी की मौलिक रचना न हो कर स्वामी विवेकानन्द की कविता का अनुवाद है।

जागरण : इस विषय से संबंधित अनुभूति जन-जागरण के रूप में अभिव्यक्त हुई है--'वेश-रूखे, अधर-सूखे', 'अन्तस्तल से यदि की पुकार', 'साहस कभी न छोड़ो'[1], आदि।

प्रकृति : प्रकृति संबंधी अनुभूतियां इस काल में उतनी प्रमुख नहीं दिखाई देतीं, जितनी प्रथम कालखण्ड में थीं। प्रकृति के प्रायः जो रूप अनुभूति का विषय बने हैं, वे इस प्रकार हैं--

(अ) वसंत : 'हंसी के तार होते हैं ये बहार के दिन', 'हंसी के फूले के फूले हैं वे बहार के दिन'[2], आदि।

(आ) वर्षा : 'स्वर के सुमेरु से झरझर के'[3], 'छाये आकाश में काले-काले बादल देखे', 'वर्षा'[4], आदि।

(इ) ग्रीष्म : 'शुभ्र आनन्द आकाश पर छा गया'[5]

वे रचनाएं जिनमें[6] एक से अधिक ऋतुओं[7] का एक साथ वर्णन हो--'उठकर छवि से आता है पल', 'देवी सरस्वती', आदि।

१- निराला, बेला, पृष्ठ ६२,८४,६७ ; २- वही, पृष्ठ ३१,३२

३- वही, पृष्ठ २०,३८

४- निराला, नये पत्ते, पृष्ठ ६६

५- निराला, बेला, पृष्ठ १७ ; ६- वही, पृष्ठ ३०

७- निराला, नये पत्ते, पृष्ट ६५

करुणा : इस विषय के अंतर्गत दीन, भिक्षुक, नारी तथा स्वातन्त्र्यपूर्व भारत के किसानों के प्रति अनुभूतियां व्यक्त की गई हैं, जो इन रचनाओं में देखी जा सकती है--'तुम्हें चाहता यह भी सुन्दर'[1], 'भीख मांगता है अब राह पर'[2], 'रानी और कानी', 'कुत्ता भौंकने लगा'[3], 'झींगुर डट कर बोला', 'छलांग मारता चला गया', 'डिप्टी साहब आये', आदि।

प्रशस्तिगान : इस विषय की पहली रचना प्रथम कालखण्ड में मिलती है।[4] इसके अंतर्गत निरालाजी ने कतिपय ख्यातिप्राप्त व्यक्तियों एवं स्त्रियों के प्रति अपनी श्रद्धा तथा सम्मान की अनुभूति व्यक्त की है--'संत कवि रविदास', 'आचार्य शुक्ल के प्रति', 'आदरणीय प्रसादजी के प्रति', 'भगवान बुद्ध के प्रति', 'श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित के प्रति', 'श्रीमती महादेवी वर्मा के प्रति'[6], 'स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज'[5], 'टूटी बांह जवाहर की'[7], (रणजीत पंडित), 'युगावतार परमहंस श्री रामकृष्णदेव के प्रति', आदि।

अणिमा में इस विषय पर अधिकांश रचनाएं हैं, यह उक्त उल्लेखों से स्पष्ट है।

ग्राम्यगीत : यह विषय भी प्रथम बार निरालाजी के इस कालखण्ड में मिलता है। इसके अंतर्गत ग्राम-सौन्दर्य तथा ग्राम्य- जीवन की अनुभूतियां

१- निराला, अणिमा, पृष्ठ

२- निराला, बेला, पृष्ठ ६१

३- निराला, नये पत्ते, पृष्ठ १५, ६१, ६३, ८२, ८४

४- निराला, अनामिका, सम्राट एडवर्ड अष्टम के प्रति, पृष्ठ १८

५- निराला, अणिमा, पृष्ठ २५-२७, ३३, ५०, ५१, ५३, ६८

६- निराला, बेला, पृष्ठ ५५

७- निराला, नये पत्ते, पृष्ठ ८६

देखी जा सकती है--`किरणें कैसी-कैसी फूटीं`,[1] `खजोहरा`, `देवी सरस्वती`, `वर्षा`।[2]

<u>मृत्यु</u> : इस विषय पर निम्नलिखित रूपों में रचनाएं देखी जा सकती है--

(अ)मां के रूप में मृत्यु की अनुभूति--`काली माता`(अनु)[3]।

(आ) अन्य विविध रूपों में--`मरण को जिसने बरा है`,[4] `मृत्यु है जहां,क्या वहां विजय?` `ऐंड ली तिरछी छवि की मान`, `वही राह दिखाता हूं,हंस-हंसकर`।[5]

उक्त विषयों के अतिरिक्त जिन अन्य विषयों मे पर निरालाजी की भावाभिव्यक्ति आधारित है,वे इस प्रकार हैं--

<u>अतीत</u> : `सहस्त्राब्दि`,[6] `चर्खा चला`,[7] ।बेला में यह विषय प्राय: नहीं के बराबर है।

<u>विद्रोह या क्रांति</u> : `राह पर बैठे,उन्हें आबाद तू जब तक न कर`, `समर करो जीवन में`,[8] आदि।

१- निराला,बेला,पृष्ठ ४१

२- निराला,नये पत्ते,पृष्ठ १७,६५,६६

३- निराला,नये पत्ते,पृष्ठ ६१

४- निराला,अणिमा,पृष्ठ

५- निराला,बेला,पृष्ठ ५६,८५,६५

६- निराला,अणिमा,पृष्ठ ३७

७- निराला,नये पत्ते,पृष्ठ ३७

८- निराला,बेला,पृष्ठ ७६,१०४

सभ्यता : `भगवान बुद्ध के प्रति',[१] `खुश खबरी',[२] आदि।

नवीन : `अगर तू डर से पीछे हट गया तो, काम रहने दे'।[३]

स्मृति : `कैसे गाते हो? मेरे प्राणों में',[४] इस वाक्य में पत्नी की स्मृति ध्वनित होती है।

भारत : `अणिमा'।[५]

मंगलगान : `सहज चाल चलो उधर'।[६]

अकेलापन : `मैं अकेला'।[७]

नयन : `आंखें वे....'।[८]

यात्रागीत : `स्फटिक शिला'।[९]

उर्दू कवि हाली की रचनाओं के समान नीतिपरक रचनाएं--`अपने को दूसरा न देख', `विनोद प्राण भरे',[१०] आदि।

१- निराला, अणिमा, पृष्ठ

२- निराला, नयेपत्ते, पृष्ठ ३३

३- निराला, बेला, पृष्ठ ७३

४- निराला, बेला, पृष्ठ २१

५- निराला, अणिमा, पृष्ठ६७

६- निराला, बेला, पृष्ठ ८८

७- निराला, अणिमा, पृष्ठ २०

८- निराला, बेला, पृष्ठ १६

९- निराला, नये पत्ते, पृष्ठ ६८

१०- निराला, बेला, पृष्ठ ४०,६५

३-६ : १६५० से १६५६ : : इस कालखण्ड में अपेक्षाकृत कम विषयों की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हुई है। साथ ही कुछ विषयों के अंतर्गत अत्यन्त सघन अनुभूति का परिचय मिलता है। यथा, भक्ति या प्रपत्ति, प्रकृति तथा जीवन। साथ ही कुछ पूर्व कालों के विषय प्राय: छूट गये हैं-- यथा, प्रशस्ति-गान, भारत, सभ्यता, अतीत आदि।

इस कालखण्ड की काव्यानुभूतियों का परिचय निम्नलिखित रूप में दिया जा सकता ह है--

भक्ति या प्रपत्ति : प्रथम कालखण्ड में यह विषय प्रमुखता की दृष्टि से दूसरे स्थान पर था, तथा दूसरे कालखण्ड में तीसरे स्थान पर। इस कालखण्ड में उक्त विषय से संबंधित अनुभूति इस काल के समस्त काव्य पर छा गई है। `अर्चना` में इस विषय पर कुल रचनाओं में से सर्वाधिक (४७) रचनाएं देखी जा सकती हैं। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इस विषय के अंतर्गत देवी या ईश्वर की प्रार्थना के अतिरिक्त राम, कृष्ण, विष्णु, शंकर आदि देवताओं का स्तवन भी मिलता है। इसके विपरीत `गीतगुंज` में लगभग दो या तीन रचनाओं से अधिक नहीं हैं। आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री के इन शब्दों में इस विशिष्टता का स्पष्टीकरण देखा जा सकता है --`अर्चना` में यह स्वर वयस के प्रभाव के कारण कदाचित् अधिक भाव-विगलित हो गया है।[1] उक्त विषय की रचनाएं निम्नलिखित प्रकारों में देखी जा सकती हैं--

प्रार्थना : `भव अर्णव की तरणी तरुणा`, `भज भिखारी, विश्वभरण`,[2] `दुरित दूर करो नाथ`, `भव-सागर से पार करो हे`, `रंग रंग से यह गागर भर दो`, `द्वार पर तुम्हारे`, `तुम से लाग लगी जो मन की`, `रहते दिन दीन शरण

१- नई धारा, जून १६५१

२- निराला, अर्चना, पृष्ठ १७, १६, २२, २३

भज ले,[1] `वरद हुई शारदाजी हमारी, `स्वर में छायानट भर दो,[2] आदि।

(आ) स्तवन : `वासना-समासीन, `श्याम-श्यामा के युगल पद, `काम के छविधाम शमन-प्रशमन राम,[3] `कामरूप, हरो काम, `अशरण-शरण राम, `जय अजेय, अप्रमेय,[4] आदि।

(इ) कीर्तन : `हरि का मन से गुणगान करो, `भजन कर हरि के चरण, मन,[5] `कृष्ण कृष्ण राम राम,[6] `हरि भजन करो भू भार हरो, आदि।

प्रकृति : दूसरे कालखण्ड में इस विषय की प्रमुखता विशेष रूप से गौण हो गई थी। परन्तु इस कालखण्ड में यह कवि का सब से प्रिय काव्य-विषय रहा है। गीतगुंज में इस विषय पर सर्वाधिक रचनाएं मिलती हैं। प्रकृति के प्रायः जो रूप अनुभूति के विषय बने हैं, वे इस प्रकार हैं--

(अ) वसंत : `आज प्रथम गायी पिक पंचम, `कुंज कुंज कोयल बोली है, `क्या सुनाया गीत कोयल,[7] `जावक-जय चरणों पर छाई, `वा उपवन खिल आई कलियां,[8] `वाद हुई शारदा हमारी, `बौरे आम कि मौरे बोले, `कूची तुम्हारी फिरी कानन में,[9] आदि।

१- निराला, आराधना, पृष्ठ ८, १६, ५०, ६८

२- निराला, गीतगुंज, पृष्ठ २३, ४४

३- निराला, अर्चना, पृष्ठ ७७, ११५, ११६

४- निराला, आराधना, पृष्ठ गीत- १४, ४८, ६७

५- निराला, अर्चना, पृष्ठ ६०, ६४

६- निराला, आराधना, गीत- १२, ५१

७- निराला, अर्चना, पृष्ठ ४८, ८१, ६३

८- निराला, आराधना, गीत- ४०, ६३

९- निराला, गीतगुंज, पृष्ठ २३, २५, २६

(आ) वर्षा : 'तपी आतप से जा सित गात', 'मन मधुवन,आली',[1] 'धाये धराधर धावन हेप', 'ऊर्ध्व चन्द्र,अधर चन्द्र', 'हिम के आतप के तप फुलसो',[2] 'पारस, मदन हिलोर न दे तन', 'जिधर देखिए,श्याम विराजे', 'प्यासे तुमसे भरकर हरसे',[3] आदि।

(इ) बादल : 'बादल रे,जीवन तड़पे',[4] 'आओ आओ वारिद वन्दन', 'गगन मेघ छाये',[5] 'शाप तुम्हारा: गरज उठे सौ-सौ बादल', आदि।

(ई) शरद : 'ओस पड़ी,शरद आई',[6] 'रूपक के रथ रूप तुम्हारा', 'शुभ्र शरत् आई अम्बर पर',[7] 'शरत की शुभ्र गंध फैली', आदि।

(उ) फागुन : 'फूटे हैं आमों के बौर', 'अट नहीं रही',[8] आदि।

(ऊ) चातुर्मास वर्णन : 'यह गाढ़ तन आषाढ़ आया'[9] आदि।

जीवन : प्रमुखता की दृष्टि से इस विषय से संबंधित अनुभूतियों की भी इस कालखण्ड में पर्याप्त प्रचुरता है।इस विषय की सर्वाधिक रचनाएं 'अर्चना' में देखी जा सकती हैं।यह उल्लेखनीय है कि इस कालखण्ड में विषाद या खेद की अनुभूति सबसे अधिक व्यक्त हुई है।इस विषय की अनुभूतियां निम्नलिखित

१- निराला,अर्चना,पृष्ठ १२७,१२८

२- निराला,आराधना,गीत- ३,२६

३- निराला,गीतगुंज,पृष्ठ ३०,३२,३४

४- निराला,गीतगुंज,पृष्ठ ३५-३७

५- वही,पृष्ठ २७

६- निराला,आराधना,गीत- २३

७- निराला,गीतगुंज,पृष्ठ ४१,४८,५५

८- निराला,अर्चना,पृष्ठ ४६,८०

९- निराला,आराधना,गीत- ६६

रूप में दृष्टव्य हैं--

(अ) उत्साह या आशा : 'पर उठे, हवा चली', 'तार तार निकल गये', 'दुख के सुख जियो, पियो ज्वाला', 'आज मन पावन हुआ', आदि।[1][2]

(आ) भक्तिजन्य उत्साह या आशा: 'लगी लगन, जो नयन', 'तन, मन, धन, वारे हैं', 'तुमसे जो मिले नयन', आदि।[3]

(इ) विषाद या खेद : 'निविड़ विपिन, पथ अराल', 'गीत गाने दो मुझे तो', 'सहज-सहन कर दो', 'मधुर स्वर तुमने बुलाया', 'हार गया', 'दुखता रहता है अब जीवन', 'भग्न तन, रुग्ण मन', आदि।[4][5]

(ई) निर्वेद : 'दुरित दूर करो नाथ', 'विपद-भय-निवारण करेगा वही सुन', 'सीधी राह मुझे चलने दो', 'रमणी न रमणीय', आदि।[6][7]

समाज : दूसरे कालखण्ड में व्यंग से पूर्ण यह विषय सर्व प्रमुख था, परन्तु इस काल में यह अत्यन्त गौण रहा है। रचनाएं इस प्रकार हैं--'पाप तुम्हारे पांव पड़ा था', 'नील नील पड़ गये प्राण वे', 'कुलके कुल के पमाने क्या', 'ऊंट बैल का साथ हुआ है', 'मानव जहां बैल-घोड़ा है', आदि। गीतगुंज में यह विषय[8][9]

१- निराला, अर्चना, पृष्ठ ४४, ८५

२- निराला, आराधना, गीत- २, १०

३- निराला, अर्चना, पृष्ठ २६, ६२, ७१ ; ४- वही, पृष्ठ ५६, ७५, ७६, ९९

५- निराला, आराधना, गीत- १५, २२, ६२

६- निराला, अर्चना, पृष्ठ २२, ११४

७- निराला, आराधना, गीत- ५७, ७९

८- निराला, अर्चना, पृष्ठ ६६

९- निराला, आराधना, गीत- ३०, ३२, ७२, ७३

नहीं के बराबर हैं।

मृत्यु : दूसरे कालखण्ड की अपेक्षा इस कालखण्ड में इस विषय पर अधिक रचनाएं हैं, जिन्हें निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है-- `धीरे-धीरे हंसकर आईं`, `निविड़ विपिन पथ अराल`, `मधुर स्वर तुमने बुलाया`[1], `मरा हूं हजार मरण`[2], `तिमिर हरण`[3], `मधुर मधुर, मृत्यु मधुर`, आदि।

मां रूप में मृत्यु की अनुभूति : `हे जननि तुम तपश्चरिता`[4]।

प्रेम : तीनों कालखण्डों में इस विषय पर सब से कम अभिव्यक्ति इसी कालखण्ड में (विरोध होता) देखी जा सकती है। इस विषय पर निम्नलिखित रचनाएं दृष्टव्य हैं-- `खेलूंगा कभी न होली`, `प्रिय के हाथ लगाये जागी`[5]।

(अ) संयोग श्रृंगार की अनुभूति : `पड़ी चमेली की माला कल`[6]।

(आ) वियोग श्रृंगार की अनुभूति : `वे कह गये जो कल आने को`[7], `बादल रे जी तड़पे`[8], आदि।

(इ) प्रकृति के माध्यम द्वारा प्रेम की अनुभूति : `कमरख की आंखे भर आईं`[9]।

~~संरक्षण में सह-विभ्रम~~

१- निराला, अर्चना, पृष्ठ ५५, ५६, ६६

२- निराला, आराधना, गीत- ६, ६६

३- निराला, गीतगुंज, पृष्ठ ५३

४- निराला, अर्चना, पृष्ठ ११७

५- वही, पृष्ठ ५०, ८४

६- निराला, गीतगुंज पृष्ठ ४०

७- निराला, अर्चना, पृष्ठ ६३

८- निराला, गीतगुंज, पृष्ठ ३५

९- वही, पृष्ठ २६

आराधना में यह विषय प्रायः नहीं के बराबर है।

<u>मंगलगान</u> : दूसरे कालखण्ड में इस विषय का प्रवेश (दिखाई देता है) ~~देखा गया था~~। इस कालखण्ड में इस विषय की रचनाओं की संख्या अधिक है, जो आराधना में (विशेष रूप से) देखी जा सकती हैं। अन्य सब संग्रहों में यह विषय नहीं के बराबर है--`आई कल जैसी पल`, `मानव के तन केतन फहरे`, `काल-स्रोत में मेरे प्रियजन`, `लो रूप लो नाम`,[1] आदि।

उक्त विषयों के अतिरिक्त इस कालखण्ड के अंतर्गत जिन विषयों पर निरालाजी की अनुभूतियां आधारित हैं, वे इस प्रकार हैं--`जागरण (जन-जागरण)`,[2] स्मृति,[3] ग्राम्यगीत,[4] करुणा,[5] विद्रोह या क्रांति,[6] अकेलापन,[7] नवीन,[8] शरीर वर्णन,[9] नयन,[10] कवि,[11] कविता,[12] कबीर की रचनाओं से मेल खाती रचनाएं[13] आदि।

१- निराला, आराधना, गीत- ४, ४४, ५३, ६१
२- निराला, अर्चना, पृष्ठ ३०, १०५, १०८
३- वही, पृष्ठ ५३ ; आराधना, गीत- ११, २६
४- निराला, आराधना, ~~पृष्ठ~~ गीत-७, ७४, ७५
५- वही, गीत- १६
६- वही, गीत- ५५
७- निराला, अर्चना, पृष्ठ २२ ; आराधना, गीत- ६२
८- वही, पृष्ठ ४१ ; आराधना, गीत- ५५
९- निराला, आराधना, गीत-७६, ८४
१०- निराला, गीतगुंज, पृष्ठ ५७
११- निराला, अर्चना, पृष्ठ ३३
१२- निराला, आराधना, गीत- २५ ; गीतगुंज, पृष्ठ ५६
१३- वही, गीत- ३९

निरालाजी के काव्य में उद्‌बोधन गीतों की भी एक परम्परा मिलती है, जो इस प्रकार है--'यमुना के प्रति', 'प्रिया के प्रति', 'प्रपात के प्रति', आदि (परिमल, पृष्ठ ४५,६४,१६७), 'मित्र के प्रति', 'खण्डहर के प्रति', 'वसन्त की परी के प्रति', आदि (अनामिका, पृष्ठ १०,२६,४४)। अनामिका में इस प्रकार की रचनाओं का आधिक्य मिलता है। 'गंगा के प्रति', (अर्चना, पृष्ठ ११२)।

इस प्रकार निराला-काव्य-विषय के अनुशीलन करने के पश्चात् निम्न-लिखित दृष्टियों से, सार रूप में उपरोक्त विकास की व्याख्या प्रस्तुत की जा सकती है।

३-७ १९१६ से १९३८ (१) हिन्दी साहित्य जगत में 'परिमल' द्वारा निरालाजी का आगमन हुआ। उस समय साहित्यिक परिवेश स्वयं निरालाजी के अनुसार इस प्रकार था :--

(अ) नवीन तथाकथित छायावादी काव्य रचनाओं की सृष्टि द्वारा हिन्दी के उद्यान में प्रभातकाल की स्वर्णच्छटा ही फैली थी।[१]

(आ) युवा-किशोर कवियों ने प्रेम और प्रकृति तथा जीवन और जागरण के प्राथमिक एवं मनोहर चित्र प्रस्तुत करने की चेष्टाएं आरंभ कर दी थीं। परन्तु जिसे वास्तविक कवि-कर्म कहते हैं, उसकी गंभीर अविश्रांत धारा नहीं बही थी।[२]

(इ) मुक्त-प्रेमी, विद्रोही प्रतिभाशाली युवा साहित्यिक रूढ़िवाद और गुरुडम के हाथों दंड का भाजन बन रहे थे। उन्हें साहित्य के राजपथों पर चलने की साधिकार स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हुई थी।[३]

१- निराला, परिमल की भूमिका, पृष्ठ ७

२- वही, पृष्ठ ७ ; ३- वही, पृष्ठ ७

(ई) परन्तु उक्त परिस्थिति द्वारा निराश होने के स्थान पर निरालाजी दृढ़ निष्ठा, आशा और विश्वास के साथ नयी क्रांति करने के लिए कटिबद्ध हुए और उन्होंने उस काल की सर्वश्रेष्ठ रचना `परिमल` प्रस्तुत की।

गीतिका उस देवी की प्रेरणा का परिणाम थी, जिसका सहज स्वर निरालाजी के संगीत के स्वर को भी परास्त करता था, जिसकी मित्र-दृष्टि सदा निरालाजी की रूक्षता को देखकर मुस्करा देती थी; जो अंत में अदृश्य होकर भी अर्धांगिनि का[1] धर्म निभाती हुई दिव्य शृंगार की पूर्ति में निरालाजी की सहायक सिद्ध हुई। उक्त तथ्य का प्रमाण ही उनकी सर्वांग सुन्दर रचना गीतिका है जिसके गीतों में एक दो नहीं, अपितु सब स्वरों का समारोह है।[2]

संक्षेप में इस समय निरालाजी के जीवन में[3] तथा रचनाओं में `मतवाला` के प्रथम पृष्ठ की घोषणा सिद्ध हो रही थी। वे उस कवि-साधक का परिचय दे रहे थे जो अमृत और विष, राग और विराग दोनों को स्वीकार कर काव्य की साधना करता है। `अनामिका` उक्त तथ्य का प्रमाण है, तथा जिस सफलता से `तुलसीदास` में छोटी छोटी बातों से लेकर बड़े बड़े मानसिक घात-प्रतिघात को अपनी वाणी में सजीव कर दिया,[4] वह उक्त साधना की सिद्धि या परिणाम है।

(२) आलोचकों ने `राम की शक्ति पूजा` तथा `तुलसीदास` की आलोचना करते हुए दोनों कृतियों पर जो आक्षेप किये हैं उनकी यहां समीक्षा आवश्यक है। यहां विशेष रूप से हमारी दृष्टि `तुलसीदास` पर है। ये आक्षेप निम्नलिखित हैं--

---

१- निराला, गीतिका, पृष्ठ ५

२- वही, पृष्ठ ६ (श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखित भूमिका)

३- वही, तुलनीय

४- निराला, तुलसीदास- परिचय, पृष्ठ ४, पांचवां संस्करण

(अ) 'तुलसीदास' प्रयाससाध्य है रचना है।

(आ) उसमें वह नैसर्गिकता नहीं जो ३५ तक की रचनाओं में भरपूर दिखाई देती है।

(इ) उसमें भाषा, छन्द तथा ~~कल्ल~~ अर्थ-? (व्याकरण?) की दृष्टि से प्रच्छन्न कृत्रिमता का आभास मिलता है।

(ई) समीक्षकों ने बाहरी चिह्नों को देखकर इसे गंभीर, उदात्त और अप्रतिम काव्य-सृष्टि कहा है, जबकि आयास-साध्य निर्मिति तथा पांडित्यमयी भाषा के कारण उसमें वास्तविक औदात्य कदाचित् उभर नहीं पाया।

(उ) सार रूप में उसकी साज-सज्जा उदात्त है, परन्तु उसका अंतरंग पूर्ववर्ती रचनाओं की भांति[1] परिपुष्ट नहीं, उसमें एक प्रकार की मंथरता और शैथिल्य दृष्टिगत होता है।

उक्त आक्षेपों का उत्तर निम्नलिखित रूप में दिया जा सकता है--

निरालाजी की पूर्ववर्ती रचनाएं मुक्तक-काव्य के अंतर्गत आती हैं, अत: मुक्तक या गीतिकाव्य में ही नैसर्गिकता देखी जा सकती हो तो गोस्वामी तुलसीदासजी की कवितावली या गीतावली को नैसर्गिक तथा रामचरितमानस को भी उतनी ही प्रयास-साध्य रचना मान लेनी चाहिए। साथ ही निरालाजी की पूर्ववर्ती रचनाओं में नैसर्गिकता होते हुए भी विशिष्ट कवि-कर्म द्वारा सृजन का सचेत प्रयास नहीं मिलता, यह कैसे कहा जा सकता है?

देश-काल की चेतना, मनोवैज्ञानिक अंत:संघर्ष, तथा दर्शन से अनुप्राणित इस कलात्मक रचना में विषय के अनुकूल काव्य को नवीन 'रूप' (form) देने का प्रयास किया गया है। अत: कल्पना में प्रतीकात्मक वैशिष्ट्य है। इस प्रबंध के

१- मेहरा, रमेशचन्द्र, निराला का परवर्ती काव्य, पृष्ठ ३८, २२३

उन्नयन-पक्ष की एक सहज आकृति,[1] समान संस्कृति, देश, काल और व्यक्तित्व की गरिमा का निर्वाह करने के लिए नया छंद-शिल्प है। अतः काव्य के उक्त विशिष्ट 'रूप' को साकार करने के लिए कवि को अपनी भाषा बहुत कुछ स्वयं गढ़नी पड़ी है।[2] आशय यह कि इन गुणों की ओर दुर्लक्ष्य कर उस पर कृत्रिमता का आरोप लगाना काव्य-कला के अज्ञान तथा आलोचना की संकुचित दृष्टि का प्रदर्शन है।

समीक्षकों पर यह आरोप भी कि उन्होंने केवल 'बाहरी चिह्नों' को देखकर इस रचना को उदात्त, गंभीर और अप्रतिम काव्य-सृष्टि कहा है- आलोचक के अज्ञान का सूचक है। वस्तुतः रचना के गाम्भीर्य और औदात्य की कसौटी का मूल आधार काव्य के बाह्य चिह्नों से अधिक उसका अंतरंग होता है। अतः समीक्षकों ने ठीक ही कहा है कि 'देश काल की अखण्ड चेतना से अनुप्राणित संस्कार का यह महामहिम रूपक (तुलसीदास) अपनी शक्ति और मर्यादा की गुरु गंभीर ओज सम्पन्नता के कारण सहज उदात्त है।'[3] अथवा 'युग के प्रति कवि का दायित्व निर्वहण ही उसके औदात्य का परिचायक है।'[4]

आशय यह कि न केवल इसकी बाह्य साज-सज्जा उदात्त है बल्कि उसका अंतरंग भी पूर्ववर्ती रचनाओं से कहीं अधिक पुष्ट है। वस्तुतः निरालाजी की समस्त रचनाओं में, इस रचना को अत्यन्त सुगठित रचना कहा जा सकता है।[5] अतः भ्रम और अज्ञान के कारण इस सर्वश्रेष्ठ रचना का रसास्वादन न करनेवाला 'होगा कोई, जो निरानन्द कर मलता'।

१- शास्त्री, जानकीवल्लभ (सं०), महाकवि निराला, पृष्ठ २२७

२- कृष्णदास, तुलसीदास की भूमिका, पृष्ठ ४

३- शास्त्री, जानकीवल्लभ (सं०), महाकवि निराला, पृष्ठ १७५

४- वर्मा, धनंजय, निराला- काव्य और व्यक्तित्व, पृष्ठ १७२-१७३

५- शर्मा, डा० रामविलास, निराला, पृष्ठ १०२, तुलनीय

(३) इस कालखण्ड में छायावादी काव्य के दो प्रमुख विषय प्रेम-सौंदर्य और प्रकृति-सौंदर्य अपने उत्कृष्ट रूप में देखे जा सकते हैं। परन्तु जन्मजात संस्कार तथा बंगाल के भक्तिमय वातावरण के फलस्वरूप निरालाजी के भक्त-हृदय का परिचय भी इसी काल से मिलना आरम्भ होता है। यह निरालाजी का अपना वैशिष्ट्य माना जा सकता है क्योंकि अन्य छायावादी कवियों द्वारा इस कोटि की प्रपत्ति भावना (या जिसे हमने पहले भावात्मक रहस्यवाद कहा है) की अभिव्यक्ति प्राय: नहीं मिलती। जीवन के प्रारम्भ से प्रियजनों की मृत्यु तथा आर्थिक संकट के परिणामस्वरूप निरालाजी में मानसिक संघर्ष उत्पन्न हो गया था। परन्तु विशुद्ध अद्वैती होने के कारण वे आशावादी भी थे। अत: कहा जा सकता है कि विषाद और उत्साह का जो संघर्ष बराबर चल रहा था वही उन्हें एक ओर ईश्वर की शरण में तथा दूसरी ओर काव्य-सृजन और विद्रोह की ओर उन्मुख करता रहा होगा। यद्यपि विषाद की अनुभूति की तीव्रता अधिक देखी जा सकती है, क्योंकि इस युवावस्था में तथा मानस-गुरु स्वामी विवेकानन्द की प्रेरणा से प्रवृत्तिमार्गी होने पर भी वे मृत्यु की कल्पना कर लिया करते थे।[१] परन्तु जिसने अपने जीवन-काल में निरालाजी को हिन्दी का प्रकाश दिया उसी स्वर्गीया पत्नी की स्मृति उन्हें इस विषादग्रस्त स्थिति से उबार देती रही है और नि निरालाजी को भी यह दृढ़ विश्वास है कि जो पहले 'चुम्बन से जीवन का प्याला भर गई, वह 'रिक्त जब होगा, भर देगी तत्काल स्मृति, काल के बंधन में जीवन यह जब तक है'[२] निरालाजी में पुन: चेतना का संचार होता है और वे समाज के दीन-दुखियों को अपनी करुणा से सराबोर कर देते हैं। स्वयं अतीत से प्रेरणा लेकर समस्त देश को भारती संस्कृति तथा प्राचीन वैभव, प्रतिष्ठा आदि का ध्यान दिलाते हैं; भारत के पुनरुत्थान के हेतु जागरण का शंख फूंकते हैं; और जीर्ण-शीर्ण के स्थान पर नवीन की प्रतिष्ठा करने वे विद्रोह करते हैं। परन्तु इतनी

१- निराला, गीतिका,

२- निराला, परिमल, स्मृति चुंबन, पृष्ठ २१४

प्रवृत्तियों में लीन होने का प्रयास करने पर भी अंततः एकाकी निराला अकेलेपन की कसक से मुक्ति नहीं पाते।

३-८ १६४२ से १६४६ :: इस काल के आरंभ से पूर्व अर्थात् १६३८ से १६४२ तक निराला जी का कोई ~~स्वतंत्र~~ पद्य-संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ परंतु इन चार वर्षों में निरालाजी का जो गद्य साहित्य (कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा आदि) प्रकाशित हुआ है वह इस काल के विषय तथा अनुभूति समझने में सहायक हो सकता है। उक्त गद्य-रचनाओं की व्यंगात्मकता और परिहास-वृत्ति का ही इस कालखण्ड में विकास मिलता ~~देखा जा सकता~~ है। इस काल के विषय-विकास की ~~रूपरेखा~~ व्याख्या इस रूप में दृष्टव्य है--

(१) निरालाजी के काव्य-विकास की दृष्टिसे यह कालखण्ड नवीन अनुभूतियों और अभिव्यक्ति का द्योतक होने के कारण, इस काल की सभी रचनाएं आलोचकों की चर्चा का विषय बनी हैं। जिनमें से 'कुकुरमुत्ता' और 'नये पत्ते' पर विशेष रूप से विचार हुआ है। 'कुकुरमुत्ता' पर विचार करते हुए आलोचकों ने जो विचार ~~आक्षेप~~ किये हं, वे इस प्रकार हैं--

कुकुरमुत्ता में कथा का उतना महत्व नहीं है, परन्तु उसको प्रस्तुत करने की शैली तथा विषय निरूपण का लक्ष्य महान है। महान इस अर्थ में कि कला-हीन सौंदर्य में भावयुक्त सौंदर्य की सजीवता इस रचना में सर्वत्र बनी रही।[१]

उक्त कथन द्वारा यह आशय स्पष्ट होता है--

(अ) सौंदर्य, कलाहीन हो सकता है।

(आ) भावयुक्त सौंदर्य की सजीवता होने पर भी रचना में कला-हीन सौंदर्य है।

१- मेहरा, रमेशचन्द्र, निराला का परवर्ती काव्य, पृष्ठ ८८

परन्तु यह बात ~~आशय यह कि~~ उक्त कथन द्वारा यह समझ में नहीं आता कि कला-हीन सौंदर्य कैसा होता है ? और रचना में यदि भावयुक्त सौंदर्य है तो वह कला-हीन कैसे हुआ ?

इस प्रकार कीऊटपटांग या तर्कहीन आलोचना द्वारा हिन्दी तथा हिन्दी साहित्य की अपार क्षति होने की संभावना देखी जा सकती है।

`नये पत्ते` विवादास्पद रचना रही है।इस रचना पर विभिन्न आलोचकों की विविध प्रकार की सम्मतियां मिलती हैं।कुछ आलोचकों ने इस संग्रह की कुछ रचनाओं को अस्पष्ट और असम्बद्ध माना है।[1] कुछ विद्वान आलोचकों ~~के~~ के अनुसार यह रचना मानवीय भावनाओं द्वारा निराला जी के अध्यात्मवाद को दी गई झकझोर है।[2] इस संग्रह की `स्फटिक शिला` रचना को प्रतिक्रियावादी तथा उसमें अश्लील,कुत्सित चित्र होने का आरोप किया गया है।[3] आचार्य जानकी-वल्लभ इस रचना को रस और मनोविज्ञान की द्वन्द्वात्मक भूमिका पर खड़ी कृति मानते हैं।[4] डा० प्रभाकर माचवे इस रचना में उद्दाम-श्रृंगार और अनन्य भक्ति,रति और विरति का विचित्र मिश्रण देखते हुए अतियथार्थवादी कला का उदाहरण मानते हैं।[5] परन्तु जहां तक `नये पत्ते` का संबंध है,माचवेजी के अनुसार इस काल की यह श्रेष्ठतर रचना है।उनके अनुसार बेला और अणिमा में निरालाजी जैसे दिशा टटोल रहे हैं,जबकि नयेपत्ते में निरालाजी की नई दिशा का निखार है।कुछ अंशों में यह कुकुरमुत्ता की व्यंग-हास्यमयी शैली का अधिक सूक्ष्म,अधिक सचोट परिष्कृत रूप है। उनके मतानुसार इस कालखण्ड की

१- वर्मा,धनंजय,निराला- काव्य और व्यक्तित्व,पृष्ठ १८६

२- शर्मा, डा० रामविलास,निराला,पृष्ठ १६१

३- उपाध्याय,विश्वंभरनाथ,महाकवि निराला- काव्यकला और कृतियां,पृष्ठ२२५-५

४- अवन्तिका,अगस्त १९५४ ; ५- साहित्य,जनवरी १९५१

६- माचवे,प्रभाकर,निराला काव्य-दर्शन और पनर्मूल्यांकन,६मार्च ६३,परिसंवाद प्रयाग विश्वविद्यालय

कविताओं में परिहास के लिए परिहास न होकर उसके पीछे एक निश्चित, पैनी, सहेतुक अर्थसत्ता है।[1] इसके अतिरिक्त उनकी दृष्टि में 'अणिमा' में जो 'सुररियलिज्म' के छींटे हैं,[2] वे कुकुरमुत्ता से ही शुरु हो जाते हैं।[3]

आलोचकों की दृष्टि में इस कालखण्ड की सभी रचनाएं हिन्दी काव्य में निरालाजी द्वारा किया हुआ एक अभिनव प्रयोग है।[4] यह प्रयोग विषयगत, शैलीगत, छन्दगत और भाषागत है।[5]

उक्त कथन के संदर्भ में यह पूछा जा सकता है कि क्या निरालाजी का प्रारंभिक काव्य (१९१९-१९३८) भी विषय, शैली, छन्द और भाषा के क्षेत्र में एक प्रयोग नहीं था ? वस्तुतः निरालाजी का समस्त काव्य प्रयोग की प्रक्रिया से गुजरा हुआ है। क्योंकि एक ओर वे मुक्त कवि और दूसरी ओर क्रांतदृष्टा थे। आशय यह कि निरालाजी की कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नयेपत्ते आदि रचनाओं को स्वतन्त्र प्रयोग न मानकर पूर्ववर्ती काव्य का विकास ही मानना चाहिए।

एक ओर कुकुरमुत्ता जैसी रचना को प्रयोगशील कहकर उसे निरालाजी की परवर्ती काव्य-प्रतिभा की सशक्त सर्जना, उनकी उर्वर बुद्धि की प्रशस्त समस्या तथा उनके विकासशील व्यक्तित्व की अनुपम प्रदक्षिणा कहा जाता है,[6] और दूसरी ओर यह स्वीकार किया जाता है कि निरालाजी की प्रयोगशीलता उनकी मनःस्थिति के विकृत रूप को बतलाती है।[7] ये दोनों विधान परस्पर विरोधात्मक हैं,

---

१- माचवे, प्रभाकर, निराला काव्य-दर्शन और पुनर्मूल्यांकन, ९ मार्च १९६३ को इलाहबाद विश्वविद्यालय की निराला परिषद में दिये गये भाषण से

२- वही,

३- शास्त्री, जानकीवल्लभ, महाकवि निराला, पृष्ठ १३६

४- मेहरा, रमेशचन्द्र, निराला का परवर्ती काव्य, पृष्ठ १५४-६३

५- वही, पृष्ठ १६० ; ६- वही, पृष्ठ १५४ ; ७- वही, पृष्ठ १६३

(२) भारत की राजनीतिक,सामाजिक,आर्थिक विडंबनाओं तथा निरालाजी के व्यक्तिगत,साहित्यिक,पारिवारिक और आर्थिक-संघर्षों के परिणामस्वरूप इस कालखण्ड के अंतर्गत अनुभूतियों में तिक्तता दिखाई देती है। यह तिक्तता विशेषरूप से भारतीय समाज तथा सभ्यता को विषय बनाकर व्यक्त हुई है।वस्तुत: व्यंग ही इस कालखण्ड की रचनाओं का स्थायी भाव माना जा सकता है।परन्तु इस काल में उनका वासाव्य लखनऊ में था,अत: लखनऊ के रसिक तथा कलाप्रिय वातावरण को उनकी इस काल की प्रेमसंबंधी रचनाओं के लिए आंशिक रूप में कारणभूत माना जा सकता है। `बेला` में उर्दू साहित्य की प्रेरणा विशेषरूप से देखी जा सकती है।परंतु जो प्रकृति प्रथम कालखण्ड में प्रेम की संगिनी बनकर आई थी वह यहां अत्यन्त गौण बन जाती है।उसके स्थान पर उभरती है जीवन की विभीषिका और मृत्यु की छाया।निरालाजी के जीवन का यह वह कालखण्ड है जिसमें निरालाजी के स्थान पर यदि और कोई होता तो आस्था को चूर चूर कर उदंडता का मार्ग ग्रहण करता,परंतु निरालाजी ने इस स्थिति में भी पहले की तरह संतुलित रहकर ईश्वर की शरण ली,और जीवन की आस्था को जीवन में सुरक्षित रखा।फलस्वरूप उन्होंने सामाजिक विकृतियों एवं विषमताओं पर केवल व्यंग ही नहीं कसे,बल्कि उन्हें दूर करने के लिए जागरण के गीत गाये।इस बार उनकी करुणा की दृष्टि ग्राम्यजीवन पर भी गई।समस्त भारत के उत्थान और कल्याण की कामना उतनी ही दृढ़ रही, अत: पुन: अतीत से प्रेरणा लेकर विद्रोह,क्रांति तथा नवीन के गीत गाकर भारत के मंगल की कामना की है।परन्तु जीवन की विभीषिका में-मन के अंधकार में भी पत्नी की स्मृति उतनी ही सतेज रही और अकेलेपन की चुभन उतनी ही तीक्ष्ण।

३-६ १६५० से १६५६ :: इस कालखण्ड के प्रारंभ होने से पूर्व भी चार वर्षों का

अंतर मिलता है जिसमें उन्होंने संन्यास ले लिया था।इस काल में निरालाजी शारीरिक और मानसिक दोनों रूपों में शिथिल हो गये थे।अत: इस काल में उनकी चित्तवृत्तियां `भक्ति` पर आकर केन्द्रित और घनीभूत हो गई हैं,जिसका उद्भव बाल्यकाल में हुआ और विकास युवाकाल में।इस काल के विषय-विकास की व्याख्या निम्नलिखित रूप में की जा सकती है--

(१) अ- इस कालखण्ड की रचनाएं-- अर्चना,आराधना और गीतगुंज - निरालाजी के संन्यास धारण करने के पश्चात् की रचनाएं हैं।[१] अतएव--

(आ) अर्चना के विषय `यौवन से अतिक्रांत कवि के परलोक से सम्बद्ध` हैं।[२] लोकप्रियता की सफलता से उदासीन होकर भी कवि ने हिन्दी साहित्य के ज्ञानी और भक्त कवियों की पंक्ति में बैठने का प्रयास किया है।

(इ) `आराधना` (उक्त) जीवन व्यापी अर्चना की एक कड़ी है।[३]

(ई) गीतगुंज अर्चना की काव्यपरंपरा और काव्य-विषय का ही विकास है।[४]

(२) इस कालखण्ड की रचनाओं के विषय की दृष्टि से, आलोचकों ने कतिपय प्रश्न उपस्थित किये हैं,जो इस प्रकार हैं--

(अ) इन भक्ति गीतों का कौन सा प्रयोजन है अथवा उनका क्या महत्व है?[५]

(आ) निरालाजी की ये रचनाएं पराजय गीत हैं या प्रार्थना गीत?[६]

१- मिश्र,शिवगोपाल औ जयगोपाल,गीतगुंज की प्रस्तावना,पृष्ठ १३

२- निराला,अर्चना,पृष्ठ ५

३- वर्मा,महादेवी,आराधना- दो शब्द

४- वर्मा,धनंजय,(सं०) निराला काव्य और व्यक्तित्व,पृष्ठ १३५

५- वही,पृष्ठ १३४

६- भटनागर,डा० रामरतन,निराला और नवजागरण,पृष्ठ २६६

इनके उत्तर में उस स्थापना की ओर निर्देश किया जा सकता है जिसके अंतर्गत निरालाजी की रहस्यवादी वृत्ति का उल्लेख करते हुए उन्हें भावोन्मुख रहस्यवादी प्रामाणित करने का प्रयास किया है. अत: उक्त मूलभूत वृत्ति के कारण ही सायत निरालाजी की रचनाओं में भक्ति या प्रपत्तिपरक (Devotional) काव्य मिलता है. निरालाजी के कवि व्यक्तित्व में भक्ति की चेतना अनुस्यूत है, अत: इस विषय पर उनके काव्य का उद्भव, विकास और परिणति स्वभाविक क्रम से ही हुई है. उसका कोई विशिष्ट प्रयोजन नहीं माना जा सकता.

ईश्वर के चरणों में शरणागति की अनुभूति पराजय से नहीं परंतु श्रध्दा से उद्भूत होती है. पराजय होने पर भी एक नास्तिक ईश्वर की शरण में नहीं जाता, और पराजय न होने पर भी एक भक्त ईश्वर के चरण नहीं छोडता. आशय यह कि इस कालखण्ड की रचनाओं को भक्ति या प्रपत्तिपरक प्रार्थना गीत ही कहा जा सकता है. निरालाजी के समस्त काव्य में विशेष रूप से छाये हुए इस विषय के आधार पर ही यदि उन्हें भक्त-कवि (Devotional-Poet) कहा जाय तो अनुचित न होगा.

(३) जैसा कि बताया जा चुका है, इस कालखण्ड की रचनाओं में निरालाजी का चित्त एकमात्र ईश्वर-भक्ति पर केन्द्रित दृष्टिगत होता है. वे ख्याति या प्राप्ति से उदासीन हो चुके है. आजीवन संघर्षरत रहने के कारण शारीरिक और मानसिक क्लेश अपनी चरम सीम पर पहुंच गये है. इस क्लेशमय जीवन की तीव्रता यहाँ तक पहुंच गई है कि कवि मृत्यु की मधुरता का अनुभव करने लगा है.[१] इस प्रकार तीनों कालखण्डों में मृत्यु की अनुभूति अखण्डरूप से व्याप्त है.[२] परंतु निरालाजी कविचेतना पर कोई आंच नहीं आई है.इस कालखण्ड में भी उनकी अनुभूतिऔर अभिव्यक्ति-

---

१- निराला, गीतगुंज, पृष्ठ ५२.

२- शर्मा डा. रामविलास, निराला, पृष्ठ १९९.

का एक प्रमुख विषय प्रकृति है जो उनके जीवन को संचालित करती है.[1] प्रेम यद्यपि गौण विषय बन गया है, परंतु उसकी धारा प्रथम दो कालखण्डों की तुलना में मंद होते हुए भी अविश्रांत बह रही है. अपने जीवन के इन अंतिम दुख-शोक-जर्जरित दिनों में भी निरालाजी जन-जीवन से दूर नहीं हुए हैं. समाज पर व्यंग भी है और उसके प्रति करुणा भी. अभी तक उन्हें जनता की जागृति पर विश्वास नहीं है, अत: क्रांति और जागरण की कामना निःशेष है. ग्राम्य जीवन की मधुरता कभी कभी उन्हें मोह लेती है. फिर भी विशेष रूप से समस्त जगत की मंगल कामना प्रबल है. पत्नी की स्मृति भी अब भी सर्वोपरि है. स्वर्गीया पत्नी के प्रति प्रेम की प्रामाणिकता में आस्था और श्रद्धा जितनी अविचल है,[2] उतना ही अकेलापन भी अविचल.

उपरोक्त विषय-विकास की तालिका तथा व्याख्या के आधार पर निराला जी के उक्त काव्य-अनुभूति के विषयों के प्राधान्य क्रम को इस प्रकार समझा जा सकता है : -

(१) तीनों कालखण्डों मे प्राप्त विषय- (१) भक्ति या प्रपत्ति (२) जीवन (३) प्रेम (४) प्रकृति (५) जागरण (६) मृत्यु (७) करुणा (८) स्मृति (९) विद्रोह या क्रांति (१०) एकांत.

(२) प्रथम दो कालखण्डों मे प्राप्त विषय - (१) अतीत (२) नवीन (३) भारत.

(३) शेष दो कालखण्डों में प्राप्त विषय -(१) समाज (२) ग्राम्यगीत

(४) प्रथम तथा तृतीय कालखण्ड में प्राप्त विषय- (१) मंगलगान.

---

१ - निराला, अणिमा/गीतगुंज की प्रस्तावना, पृष्ठ १६ (तुलनीय)
२ - निराला, आराधना, गीत-२६.

(५) मात्र दूसरे कालखण्ड में प्राप्त विषय - (१) प्रशस्तिगान (२) संस्कृति.

उक्त विषयों में से निम्नलिखित विषयों को प्रतिनिधि विषयों के रूप में स्वीकृत किया जा सकता है, तथा इन विषयों पर आगे विचार किया जा सकता है :-

(१) भसक्त या प्र पत्ति.

(२) जीवन - इस विषय के अंतर्गत जीवन से घनिष्ट रूप से संबंधित स्मृति.

(३) प्रेम   तथा एकान्त का भी विचार किया जा सकता है.

(४) प्रकृति

(५) जागरण - राष्ट्रीय जागरण के विषय 'भारत' को इसमें समाहित किया जा सकता है.

(६) मृत्यु.

(७) करुणा - इस विषय के अंतर्गत 'समाज' तथा 'संस्कृति' को अंतर्भूत किया जा सकता है क्यों कि इन्हीं के प्रति निरालाजी की भावात्मक या व्यंगात्मक अनुभूति व्यक्त हुई है.

(८) विद्रोह या क्रांति - इस विषय के अंतर्गत 'अतीत' तथा 'नवीन' का समावेश हो सकता है क्यों कि निरालाजी ने 'प्राचीन' का अतीत से प्रेरणा लेकर, नवीन का आग्रह रखते हुए किया है.

(९) ग्राम्यगीत

(१०) प्रशस्तिगान

उक्त विषयों का विस्तारपूर्वक अध्ययन एवं निराला-काव्य में उनका प्रतिफलन निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है :-

४ - निराला-काव्य की प्रतिनिधि अनुभूतियाँ स्वरूप, व्याख्या और सौंदर्य.

४-१ भक्ति या प्रपत्ति :: तीन कालखण्डों में निराला-काव्य के विषयों का विकासात्मक अध्ययन करते समय यह प्रमाणित किया जा चुका है कि भक्ति या प्रपत्ति के विषय से संबंधित रचनाएं आदि से अंत तक प्राप्त होती हैं। द्वितीय कालखण्ड को छोड़कर, प्रथम तथा तृतीय कालखण्ड में इस विषय की प्रमुखता का भी निर्देश किया जा चुका है।

विद्वानों में ने प्रायः छायावादी काव्य के अंतर्गत अध्यात्म का सूत्र, अनस्यूत माना है।[1] सर्वसामान्य रूप से, आलोचकों एवं अध्येताओं ने, छायावाद के इस अध्यात्म तत्व को ही 'रहस्यवाद' नाम से अभिहित किया[2] तथा इसे छायावाद की एक प्रकृति स्वीकार कर लिया गया।[3] यद्यपि कुछ अन्य आलोचकों ने छायावाद के अंतर्गत इस अध्यात्मतत्व का अस्वीकार किया है।[4] अतः छायावाद के अतिरिक्त रहस्यवाद भी आलोचना का एक विषय मान लिया गया, जिसके अंतर्गत सामान्यतः आत्मा का परमात्मा या ब्रह्म के प्रति आकर्षण, उसकी प्राप्ति की उत्कंठा, लोकोत्तर आनन्द की प्राप्ति, तथा प्रकृति में रहस्यमयी चेतना की झलक, आदि बातों का समावेश माना जाता है।[5] परंतु स्वयं निरालाजी ने छायावाद से भिन्न रहस्यवाद की कल्पना नहीं की है। वस्तुतः वे छायावाद को रहस्यवाद का पर्यायवाची ही मानते हैं।[6] इनमें कोई भेद वे स्वीकार नहीं करते, क्योंकि उनकी दृष्टि में छायावाद कवि की वह अंतःवृत्ति है जो जड़ को छोड़कर चेतना को पकड़ती है।[7] आशय यह कि निरालाजी छायावाद या रहस्यवाद को काव्य की विशिष्ट शैली न मानकर वृत्ति या दृष्टि (attitude)

१- भटनागर, डा० रामरतन, निराला और नवजागरण, पृष्ठ १६०
२- वही ; ३- शर्मा, डा० रामविलास, पृष्ठ १८२
४- डा० नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां, पृष्ठ
५- शर्मा, डा० रामविलास, निराला, पृष्ठ १८२
६- निराला, चाबुक, पृष्ठ ३८
७- भटनागर, डा० रामरतन, निराला और नवजागरण, पृष्ठ २१४

मानते हैं इस तथ्य का विस्तार से विवेचन `दर्शन` के अध्याय में किया जा चुका है।[1] छायावाद के अन्य प्रमुख कवियों ने भी रहस्यवाद को रहस्यवाद का नवीन दर्शन कहकर उक्त वृत्ति या दृष्टि का समर्थन किया है।[2] इस रहस्यवादी वृत्ति को दर्शन के अध्याय में ज्ञानोन्मुख तथा भावोन्मुख इन दो रूपों में समझाया जा चुका है। अतः भक्ति या प्रपत्तिपरक अनुभूतियों में निरालाजी का भावोन्मुख रहस्यवाद ही मिलता है। इसलिए इस विवेचन के अंतर्गत रहस्वाद के स्थान पर निरालाजी की उस भक्ति या प्रपत्ति की वृत्ति को अध्ययन का विषय[3] स्वीकार किया गया है, जिसके संस्कार बाल्यकाल में बने, विकास तारुण्य में हुआ[4] तथा परिणति वार्धक्य में हुई। अतएव इस विषय संबंधित निरालाजी की काव्यानुभूतियों का अध्ययन करने से पूर्व `भक्ति` से क्या तात्पर्य है, यह संक्षेप में स्पष्ट करना उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

भक्ति की व्याख्या करते हुए शांडिल्य ने कहा है- `सा परानुरक्तिरीश्वरे भक्तिः`[5] अर्थात् उस परमात्मा के प्रति अनुरक्ति ही[6] भक्ति है। नारद के अनुसार भी ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ प्रेम ही भक्ति है। ईश्वर के प्रति इस तीव्र प्रेमानुभूतिजन्य भक्ति के विषय में प्रह्लाद का कथन भी मार्मिक है। उनके अनुसार जितना प्रेम अज्ञानी के हृदय में इस जगत की क्षणभंगुर वस्तुओं के प्रति होता है, वैसा ही अखण्ड प्रेम ईश्वर के प्रति होना, भक्ति है--

---

१- दे. पृ. १५४

२- वर्मा, महादेवी, विवेचनात्मक गद्य, पृष्ठ ६०, ६१, १०७-१११, १४०

३- शर्मा, डा० रामविलास, निराला, पृष्ठ ८६

४- निराला, `देवी` कहानी संग्रह में `भक्त और भगवान` कहानी

५- हिंदी साहित्य कोश - पृ. ५२६

६- वही

'या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ।।'[१]

तात्पर्य यह कि ईश्वर के प्रति अनुराग का नाम भक्ति है।यह अनुराग जिसके प्रति होगा,वह आराध्य है और जो यह अनुराग रखता है वह 'आराधक' है। आराध्य के प्रति आराधक के हृदय में निष्काम अथवा सकाम अनुराग हो सकता है।जहां निष्काम अनुराग होगा वहां आराध्य के गुण,रूप,शील के प्रति आकर्षण एवं इस आकर्षण को अनुकूलता प्रदान करने वाली वस्तुओं की प्राप्ति का संकल्प होता है।तथा आराध्य के अतिरिक्त जो है,उसके प्रति विकर्षण,[२] और आराध्य के प्रतिकूल वस्तु,पदार्थ या व्यक्ति की वर्जना की जाती है।अतः इस प्रकार की निष्काम भक्ति में आराध्य के प्रति समर्पण या शरणागति की भावना रहती है।गीता में ऐसे निष्काम भक्त को ज्ञानी कहा है क्योंकि वह ईश्वर के गुण और गौरव को बराबर समझने के बाद ही समर्पण करता है।अतः आर्त,जिज्ञासु,अर्थार्थी इन तीनों प्रकार[३] के भक्तों की अपेक्षा ज्ञानी भक्त ईश्वर को अधिक प्रिय माना गया है।इस भक्ति-भावना के अंतर्गत ईश्वर के प्रेम की विरहावस्था या विरहजन्य व्याकुलता,उसमें लीन होने की या उसमें मिलने की इच्छा आदि का भी समावेश होता है।परंतु जहां मात्र ईश्वर-प्राप्ति की कामना अथवा उसकी कल्पना होगी वहां सकाम भक्ति का रूप दिखाई देगा। इसके अंतर्गत विविध इच्छाओं की तथा आशाओं की अभिव्यक्ति एवं ईश्वर की कृपा-याचना और सफलता आदि की कामना का भी समावेश होता है।

निरालाजी में प्रायः दोनों प्रकार की भक्ति का रूप देखा जा सकता है,

---

१- Swami Vivekanda - Bhakti-Yoga - 1959 - P. 9

२- आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
आत्मानिक्षेप कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः।। वायुपुराण-

३- श्रीमद्भगवद्गीता,

परंतु उनके अंतिम दिनों में अर्थात् तीसरे कालखण्ड में निष्काम भावना की प्रमुखता देखी जा सकती है।[1] निरालाजी ने `अर्चना` की `स्वयोक्ति` में भक्ति की रचनाओं में रस-सिद्धि की दृष्टि से हिन्दी साहित्य के ज्ञानी तथा भक्त कवियों की श्रेष्ठता का उल्लेख किया है।अत: उक्त उल्लेख के संदर्भ में विचार करते हुए कहा जा सकता है कि आराध्य की दृष्टि से कबीर, सूर तथा तुलसी की तुलना में निरालाजी की आराध्य कल्पना भिन्न है।कबीर ने निराकार ब्रह्म को स्वीकार कर लिया था।परन्तु सूर, तुलसी ने निराकार को स्वीकार करते हुए भी महत्व साकार ब्रह्म को ही दिया।अथवा दूसरे शब्दों में उन्होंने निराकार की साकारपरक अनुभूति व्यक्त की।निरालाजी ने इससे भिन्न कहीं साकार की निराकारपरक और कहीं निराकार की साकारपरक अभिव्यक्ति करते हुए आराध्य को इन दोनों के विलयित (fused) रूप में अनुभूत किया है।`तुम और मैं` कविता में ब्रह्म को मनमोहन, रामचन्द्र, शिव आदि साकार रूप में बताने के साथ`वर्षों के बीते वियोग`,`नभ`,`गंध-कुसुम कोमल-पराग`,`अम्बर`आदि निराकार रूप में भी व्यक्त किया है।[2] उक्त विशिष्टता का कारण समझने के लिए स्वयं निरालाजी के इस कथन का निर्देश किया जा सकता है--`कबीर निर्गुन ब्रह्म की उपासना में आधुनिक से आधुनिकों के मनोनुकूल होते हुए भी भाषा, साहित्य, संस्कृति जैसे अमार्जित हैं, वैसे ही सूर, तुलसी आदि भाषा संस्कार रखते हुए भी कृष्ण और राम की सगुण उपासना के कारण आधुनिकों की रुचि के अनुकूल नहीं रहे।`[3]

उक्त कथन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि निरालाजी के आराध्य का विशिष्ट रूप है, जो हिन्दी के अन्य भक्त कवियों

१- निराला, अर्चना में स्वयोक्ति, पृष्ठ ५

२- निराला, परिमल, पृष्ठ ८४-८६

३- निराला, प्रबंध प्रतिमा, पृष्ठ

से भिन्न है, तथा उनकी भक्ति का भी वह रूप नहीं मिलता जो सूर, तुलसी जैसे भक्त कवियों में मिलता है।[1] अतएव निरालाजी के आराध्य तथा उनकी भक्ति परक अनुभूति या भावोन्मुख रहस्यवादी वृत्ति पर अधिक प्रकाश डालते हुए श्री जयशंकर प्रसाद ने कहा है-- 'आलंबन के प्रतीक उन्हीं के लिए अस्पष्ट होंगे, जिन्होंने यह नहीं समझा है कि रहस्यमयी अनुभूति, युग के अनुसार अपने लिए विभिन्न आधार चुना करती है।'[2]

आशय यह कि उक्त संपूर्ण विवेचन से सिद्ध होता है कि निरालाजी की भक्ति या प्रपत्ति मात्र अनुभूति ही नहीं, अपितु आस्था भी (Conviction) भी है[3] क्योंकि उनकी अनुभूति विचार और दर्शन से पुष्ट है। अत: उक्त विषय के अंतर्गत आराध्य, उसके प्रति वृत्ति या अनुभूति, तथा उसकी अभिव्यक्ति तीनों का निरालाजी ने वैशिष्ट्यपूर्ण रूप प्रस्तुत किया है।

उक्त विवेचन को ध्यान में रखते हुए निरालाजी की भक्ति या प्रपत्तिपरक अनुभूति को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है। निरालाजी की समस्त भक्ति या प्रपत्तिपरक रचनाओं को प्रथम इन तीन रूपों में देखा जा सकता है--

(१) भजन या कीर्तन : इसके अंतर्गत साकार ब्रह्म का नामस्मरण करते हुए भजन का कीर्तन किया गया है।[4] कहीं हरि-भजन का महत्व बताते हुए संसार के अन्य क्रिया-कलापों की गौणता या व्यर्थता बताई है।[5] 'आराधना' में उक्त प्रकार की रचनाएं विशेष रूप से मिलती हैं। राम और कृष्ण के नामस्मरण तथा महत्ता का उल्लेख करते हुए संघर्षमय तथा नाशवान जीवन में नाम-कीर्तन

१- शास्त्री, आचार्य जानकीवल्लभ, सम्मेलन पत्रिका का श्रद्धांजलि अंक, पृष्ठ ४६३ (तु०)

२- निराला, गीतिका, पृष्ठ ६

३- निराला, परिमल- पंचवटी-प्रसंग (४), पृष्ठ २५३

४- शास्त्री, आचार्य जानकीवल्लभ, सम्मेलन पत्रिका का श्रद्धांजलि अंक, पृ० ४६९ (तु०)

५- निराला, अर्चना, पृष्ठ ६०, ६४

की सार्थक्ता पर बल दिया है.[१] अन्य रचनाओं में हरि-भजन के साथ सन्मार्ग पर निर्भयतापूर्वक विचरण करने के लिए गुरू की कृपा का महत्व बताया है.[२] राम कृष्ण, शिव, विष्णु आदि का जयगान, स्तुति तथा कीर्तन इन रचनाओं में देखे जा सकते है. "जय अजेय, अप्रमेय, जय जग के परम पार.

जय शिव,जयविष्णु, शंकर, जय कृष्ण, राम...[३]

इस प्रकार इन रचनाओं मे एक ही अनुभूति का क्रमश: उद्घाटन तथा भाव की रूजुता मिलती है.

(२) स्तवन : बंगालमें रहने के फलस्वरूप तथा रामकृष्ण मिशन के संपर्क में आने के कारण प्राय: देवी का साकार रूप में स्तवन निरालाजी की रचनाओं में लिखा है. कहीं सरस्वती के वीणावादिनि रूप का[४] स्तवन करते हुए उसके विश्व - व्यापक प्रभाव तथा प्रेम का उल्लेख किया है. अन्य स्थान पर उसके मधुर परंतु विराट रूप का चित्रण करते हुए उसका आह्वान किया है.[५] इसी प्रकार के अन्य स्तवन उसे गुणवान कहकर उसके कल्याणमय रूप का वर्णन किया है.[६] भारतमाता की भी देवी के रूप में कल्पना करते हुए उसके विराट और औदार्यपूर्ण चित्रण के साथ स्तवन किया है.[७] इस प्रकार का वर्णन हिन्दी साहित्य के अन्य किसी भक्त कवि में नहीं मिलता. केवल भारत ही नहीं राष्ट्रभाषा की भी देवी के रूप में वंदना एवं स्तुति की गई है.

बन्दूँ पद सुंदर तव,
छन्द नवल स्वर-गौरव;
जननि, जनक - जननि - जननि,
जन्मभूमि भाषे...[८]

---

१ - निराला, आराधना, गीत, १२,१४.
२ - वही, गीत, ५१, ३ - वही, गीत -६७.
४ - निराला, अनामिका, पृष्ठ २३. ५ - निराला, गीतीका, पृ.५५.
६ - वही, पृ. ७५. ७ - वही, पृ. ७३. ८ - वही, पृ. ४२.

(   )

कितने बार पुकारा
खोल दो द्वार, बेचारा,
मैं बहुत दूर का थका हुआ,
चल दुखकर - श्रम-पथ, रुका हुआ,
आश्रय दो आश्रम - वासिनि,
मेरी हो तुम्हीं सहारा. [१]

उक्त प्रकार की रचनाओं में मिश्रभाव की अभिव्यक्ति हुई है. 'सेवा' में निराकार ईश्वर के प्रति जीवन की अस्थिरता, भय तथा सर्वनाश से बचाने की प्रार्थना की गई है.[२] इस प्रकार की रचनाओं में एकान्तभाव होते हुए भी भाव-वक्रता मिलती है. अन्यत्र जगत के प्रति विकर्षण की अनुभूति व्यक्त करते हुए, आराध्य की गरिमा को संबोधित कर उससे रक्षा की प्रार्थना की गई है.[३] अन्यत्र ईश्वर के साथ स्नेह-संबंध स्थापित होने ही वह सम्मान पाता है, अतः सब कुछ उसी का दिया हुआ है.

---

१ - वही, पृष्ठ ६२.   २ - निराला, परिमल पृ.२०.
३ - निराला, अर्चना, पृ १४.

के फलस्वरूप जगत के प्रति विकर्षण की अनुभूति व्यक्त करते हुए, ईश्वर को निरामय निर्मम, निराकांक्षा, निरुद्गम, निराकार आदि कहकर माया को उसके चरणों की दासी बताया है।[1] गीतिका के १२ वें गीत[2] में यदि निराकार आराध्य की सर्वव्यापकता का सही रूप जानने का प्रयास किया है तो २५ वें गीत[3] में तथा अन्य एक रचना में जीवन के प्रति विकर्षण की अनुभूति के साथ उसी निराकार आराध्य के सर्वव्यापी तथा अद्वैतवादी रूप का स्पष्टीकरण किया गया है।[4] इस रचना में जीवन के प्रति विकर्षण तथा परमतत्व के प्रति आकर्षण तथा समर्पण के रूप में संवादी-विवादी अनुभूतियां व्यक्त हुई है। अतः मिश्र भावों की व्यंजना मिलती है।

भक्ति की निष्काम अनुभूति के अंतर्गत आराध्य के मिलन की तीव्र आकांक्षा तथा विरह की आकुलता व्यक्त की है। कहीं खोजने पर भी न मिलने का खेद, तथा हार का स्वीकार किया गया है।[5] अन्य एक कविता में भूत तथा वर्तमान काल की स्थिति का अंतर बताते हुए भक्ति की अनुभूति में विरह की वर्तमान व्याकुलता की अभिव्यक्ति मिलती है।

चरण गहे थे, मौन रहे थे,
विनय,वचन बहु-रचन कहे थे .....
ठोकर गली गली की खायी
जगती से न कभी बन आयी,
रहे तुम्हारी एक सगायी,
इसी लिए कुल ताप सहे थे।[6]

---

१ - निराला, आराधना, गीत,५०.
२ - निराला,गीतिका पृष्ठ १४.
३ - वही पृष्ठ २७.
४ - निराला,अर्चना,पृष्ठ २१.
५ - वही, पृष्ठ २१,८७.
६ - वही पृष्ठ ११३.

इस प्रकार की रचनाओं में भाव की ऋजुता दृष्टव्य है. प्रपत्ति या शरणागति या समर्पण की अभिव्यक्ति प्राय: देखी जा सकती है. देवी के प्रति दीनता व्यक्त करते हुए अपनी असमर्थता को प्रकट करने का प्रयास किया गया है. परंतु फिर भी भक्ति -जन्य उपहार स्वीकार करने की प्रार्थना की गयी है.[1] क्यों कि वस्तुत: आराधक स्वत: अक्षम है, केवल आराध्य की कृपा के फलस्वरूप ही वह सम्मान पाता है, अत: सब कुछ उसी का दिया हुआ है.

' तुम्हीं गाती हो अपना गान,
व्यर्थ मै पाता हूं सम्मान
मेरा पतझाड - हारा हृदय हर
पत्रों के मर्मर के सुखकर
तुम्हीं सुनाती हो नूतन स्वर
भर देती हो प्राण.[2]

इन पंक्तियों के आधार पर निराला जी को कृपा मार्गी भक्त कहा जा सकता है. ज्ञान मार्गी शंकर अद्वैतवादी नहीं. कवि पुन: पुन: इस जीवन के श्रान्त - क्लान्त होकर शरण में आता रहता है. शरण में मरण का दुख मिट जाता है और आनन्द की प्राप्ति होती है. अत: वह आराध्य के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना नहीं भूलता.[4] इस प्रकार की अभिव्यक्तियों में एकान्त भाव के साथ भाव की मधुरता तथा ऋजुता दिखाई देती है.

---

१ - निराला, परिमल, पृष्ठ ९५-१४१.
२ - निराला, गीतिका, पृष्ठ ४९.
३ - निराला, वही, पृष्ठ, १००.
४ - निराला, बेला, पृष्ठ, २३,४५.

सकाम भक्ति की अनुभूति के अंतर्गत कृपा याचना तथा अन्य आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति है. आराध्य से समस्त जगत को ज्योतिर्मय करने तथा नवीन ता का वर देने की कामना की गई है.[1] कहीं करूणाकर के स्नेह तथा स्पर्श द्वारा विषाद और दुख दूर करने की कामना व्यक्त की गई है. आर्त आराधक की मार्मिक अनुभूति इन रचनाओं में दृष्टव्य है.[2] अन्यत्र उस असीम के प्रति स्वर में छायानट राग की मधुरता भरने की, नवीन वर देने की कामना व्यक्त की गई है.[3] उक्त कामनाओं द्वारा कवि का विश्वात्मक अनुभूति के दर्शन होते है, स्व पर केन्द्रित संकुचित अनुभूति के नहीं.

<u>४-२ जीवन :</u> : इस विषय के अंतर्गत जीवन की उन अनुभूतियों का विचार किया जा सकता है, जिन्हें स्थूल रूप से सामान्यत: सुखात्मक और दुखात्मक कहा जाता है. जीवन के संघर्ष से उत्पन्न विषाद और उत्साह आशा और निराशा, सफलता-विफलता, क्षोभ और संतोष आदि अनुभूतियां उक्त दो विभागों में समाविष्ट होती है. वैसे जीवन में अनुभूतियों की संभावनाएं अनेक हो सकती है. परंतु निराला-काव्य में प्राप्त प्रमुखता की दृष्टि से इस विवेचन के अंतर्गत, स्मृति, एकान्त और मृत्यु इन तीनों का ही समावेश किया जा सकता है. इनका अध्ययन दो दृष्टियों से किया जा सकता है -----

---

१ - निराला, परिमल, पृष्ठ २३, गीतिका पृ. ३.
२ - निराला, गीतिका, पृष्ठ ४५.
३ - निराला, गीतगुंज, पृष्ठ ४४.

इन रचनाओं में भावों की ऋजुता के साथ गरिमा का भी दर्शन होता है. आराध्य के ये विशिष्ट रूप उल्लेखनीय है. देवी के उक्त मधुर तथा कोमल रूपों के अतिरिक्त कठोर तथा भयंकर मृत्यु रूप में भी निरालाजी ने उसकी स्तुति की है.[1]

(३) प्रार्थना : इस प्रकार की रचनाओं में अनुभूतियों की कलात्मक अभिव्यक्ति विशेष रूप से हुई है. ये अनुभूतियां साकार तथा निराकार दोनों के विलयित रूप के प्रति व्यक्त हुई है. साकार-निराकार के सम्मिलित रूप के अंतर्गत अधिकांश देवी के प्रति भक्ति या प्रपत्ति की प्रार्थनापरक अनुभूति मिलती है. प्रार्थना[2] मे देवी को किरणमयी कहकर मन के आकाश में विचरण करने की प्रार्थना की गई है. रचना में आरंभ से अंत तक एक ही प्रार्थना की अनुभूति का क्रमश: प्रसार दिखाई देता है, अर्थात् वह समस्त रचना में परिव्याप्त है. अत: ऐसी रचनाओं में एकान्त भाव के दर्शन होते है. गीतिका के १८ वें गीत में[3] ज्योतिर्मयी से स्वप्न बनकर उतरने की प्रार्थना तथा उसमें लीन होने की अभिलाषा व्यक्त की गइ है. अन्यत्र आश्रमवासिनी से आश्रय देने की प्रार्थना की गई है. इस रचना में प्रार्थना के साथ अवसाद की अनुभूति प्रबल है.

---

१ - निराला , अनामिका, पृष्ठ ११०-१११.
२ - निराला, परिमल, पृष्ठ, ३४.
३ - निराला, गीतिका, पृष्ठ १८.

(१) इन तीनों के प्रति अनुभूति व्यक्त कर, जीवन का कौन सा रूप व्यंजित हुआ है ? (२) इनके द्वारा जीवन का कौन सा रूप व्यंजित हुआ है ?

बाल्यकाल से स्नेह का अभाव, तारुण्य में प्रिय तथा आप्तजनों का वियोग, सामाजिक तथा साहित्यिक क्षेत्र में कटुता, उपेक्षा, अपमान, तथा अंतिमदिनों में शारीरिक रूग्णता के बीच घिरक निरालाजी ने जो संघर्षरत काव्य-साधना की उसकी अनुभूतियों के अनेक रूप काव्य में व्यक्त हुए हैं. असफलता के कारण असमर्थता या असमर्थता के कारण असफलता की अनुभूति तथा उसके फलस्वरूप विषाद, खेद तथा खिन्नता का भाव स्थान-स्थान पर व्यक्त हुआ है.[१] इस अनुभूति के साथ की अनुताप तथा संताप की अनुभूतिभी व्यक्त हुई है.

अपने अतीत का ध्यान
करता मैं गाता था गाने भूले अम्रियमाण
एकाएक क्षोभ का अंतर में होते ही संचार
उठी व्यथित उँगली से कातर एक तीव्र झंकार
विकल वीणा के टूटे तार...[२]

निरालाजी की व्यथा कुछ समय के लिए ही अनुभूति नहीं हुई है. अपितु वह उनके समस्त जीवन में व्याप्त है. अत: स्थान - स्थान पर उसकी अभिव्यक्ति की व्यर्थता भी प्रकट की गई है.[३] मन ही मन इस दुख को पी जाने की विवशता के कारण जीवन धिक्कार का पात्र बन गया है.

धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसके लिये सदा ही किया शोध.[४]

---

१ - निराला, परिमल पृष्ठ ६५,अनामिका पृष्ठ, ११८,१२०.
२ - अनामिका, पृष्ठ ४५,४८. ३- वही पृष्ठ १२४,अर्चना पृ.५५.
४ - निराला, ~~परिमल-पृष्ठ-४२,६४,५,~~अनामिका,पृ.१६२.

अनेक स्थानों पर संघर्षमय जीवन से हार जाने की अनुभूति भी व्यक्त हुई है. जिसमें निराशा, जीवनकी नीरसता तथा असारता, शारीरिक तथा मानसिक रुग्णता आदि की अनुभूतियों की पुष्टि मिलती है.[1] विषाद की यह अनुभूति कहीं अत्यंत व्यापक एवं गहन बन गई है, और अंत में इस विषादजन्य अनुभूतियों की परिणति में निर्वेद की व्यंजना मिलती है.[2]

उक्त प्रकार की विविध अनुभूतियां प्राय: एकान्त भाव के रूप में व्यक्त हुई है. यद्यपि अतिपय बडी रचनाओं में विषाद के साथ उत्साह की अनुभूति भी तुल्यबल बनकर आई है. यथा, अनामिका की 'बेन बेला' सरोज स्मृति,' 'राम की शक्ति पूजा' आदि. भाव की ऋजुता इन रचनाओं मे विशेषरूप से मिलती है.

यद्यपि कवि के जीवन का अधिकांश विषाद की अनुभूतियों से ह ही ग्रस्त रहा है, परंतु आशा और उत्साह का भी नितांत अभाव नहीं है. यौवन पर संपूर्ण आस्था प्रकट करते हुए उत्साहित मन द्वारा आशा और उत्साह के संचार का विश्वास प्रकट किया गया है. जीवन के संघर्षों से घिरा रहने पर भी उसके अन्त होने की, तब तक संभावना नहीं, जब तक जीवन में जीवन है. अत: न केवल जीवन का रस प्राप्त हरने की,[4] अपितु उसका जीवन में संचार करने की दृढ आस्था और निष्ठा व्यक्त की गई है. इस उद्देश्य को प्राप्त करने कहीं झरने से प्रेरणा लेकर कठिन मार्ग में भी आगे बढने की तथा स्वत: निर्जीवन होने से पूर्व निर्जीव में नूतन जीवन भरने की प्रेरणा ली गई है.

---

१ - निराला, परिमल पृष्ठ ४२,६८,६९, गीतिका पृ.५६,अनामिका पृ४४, अन ४८

२-- (अणिमा, पृ. २०,५१,६६.आराधना,१९,२२.

२ - निराला, आर्चना पृ. ६७.

३ - निराला, बेला पृ. ४७,५६, अर्चना,पृ.२२. आराधना,गीत,५७,७६.

४ - निराला परिमल पृ ६२,१२०,१२९.

गर्जित जीवन झरना
उद्देश पार पथ करना. ...
' सूखते हुए , निर्जीवन
होने से पहले तक, मन,
बढ़ना, मरकर बनना घन,
धारा नूतन भरना. ' [1]

अन्यत्र पर्वत की तरह अडिग रह कर अपनी उच्चता द्वारा जगत को नवीन दृश्य दिखाने की तथा झरनों के रूप में रस संचार या जीवन संचार करने की प्रेरणा ली गई है.

तू कभी न ले दूसरी आड,
शत्रु को समर जीते पछाड,
सैकड़ों फलेंगे फूलेंगे,
जीवन ही जीवन भर देंगे,
झरने फूटेंगे उबलेंगे,
नर अगर कहीं तू बन पहाड.[2]

अनेक स्थानों पर निर्भयतापूर्वक अग्रसर होने की व्यंजना भी मिलती है.[3] इस संदर्भ में परवर्ती रचनाओं में यत्र-तत्र भक्तिजन्य उत्साह की अभिव्यक्ति का भी उल्लेख किया जा सकता है.[4]

उक्त प्रकार की रचनाओं मे भी प्राय: एकान्त,भाव की ही व्यंजना मिलती है. परंतु भावों की स्थूलता के दर्शन विशेषरूप से परवर्ती रचनाओं में होते है.

---

१ - निराला, गीतिका,पृ. १०५, २ - निराला,बेला,पृ.९२.
३ - वही, पृष्ठ ७३,९०. ४ - निराला,अर्चना,पृ.६१,
(- ७१,९७,१२२.

जीवन की उक्त अनुभूतियों के संदर्भ में स्मृति तथा एकान्त की अनुभूतियों का अध्ययन किया जा सकता है।

निराला -काव्य में स्मृति के अमूर्त रूप की व्यापक अनुभूति मिलती है। परिमल की 'स्मृति' रचना में शैशव भावना तथा वार्धक्य की क्रमश: स्मृति-रेखाएँ उभारने का प्रयास किया गया है। इस रचना में स्मृति की अनुभूति की दार्शनिक अभिव्यक्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

बंधे जीवों की बन माया,
फेरती फिरती हो दिन-रात,
दु:ख - सुख के स्वर की काया,
सुनाती है पूर्व - श्रुत बात,
जीर्ण जीवन का दृढ़ संस्कार,
चलाता फिर नूतन संसार...[1]

यद्यपि इसमें एकान्त भाव की व्यंजना प्रधान है, परंतु अभिव्यक्ति में भाव-वक्रता देखी जा सकती है। इसी संग्रह की 'स्मृति-चुंबन' रचना में केवल बाल्य तथा यौवन की स्मृतियाँ व्यक्त हुई हैं। इसके अंतर्गत स्पर्श स्मृति की संवेदनात्मक अनुभूति अत्यन्त कलात्मकता से व्यक्त हुई है। यहाँ 'चुंबन' जैसी स्पर्श-संवेदना को दार्शनिक-प्रत्यय (Philosophical - Concept) के रूप में प्रस्तुत किया है।

---

१ - निराला, परिमल पृष्ठ १०८-११३.

ज्योति का पारावार
पार करते ही हुए,
डूब जाते कभी वे
सुप्ति के मोह में
चुम्बन का स्वप्न ले.
देखता मैं बार बार
ज्योति के ही चक्राकार
चुम्बन से चंचल हो उठता संसार
स्थिरता में गति फैलती -
भास होता ज्ञान का.
कैसे कहूँ, जीवन वह
मोह था, अज्ञान था.[१]

इस रचना में श्रृंगार के रति भाव की, सूक्ष्मता के साथ वक्रतापूर्ण व्यंजना हुई है.

प्रायः पत्नी की स्मृति द्वारा विषाद या निराशा आदि अनुभूतियाँ उद्दीप्त हुई हैं. फलस्वरूप वियोग या करूणा की व्यंजना मिलती है. पत्नी की स्मृति भूतकालीन जीवन के पटल खोलती हुई जीवन के करूण रूप को उद्घाटित कर जाती है.[२] अन्यत्र उसकी स्मृति, सृजन[२] की प्रेरणा का रहस्य उद्घाटित करती हुई कृतज्ञता-ज्ञापन करवाती है. अन्य एक रचना में पत्नी की स्मृति, भूतकालीन यौवन

---

१ - वही, पृष्ठ २१०-२१४.   २ - वही, पृ. १२२-१२३.
२ - निराला, अनामिका, पृष्ठ ४२-४४.

के अनुराग को उभारकर उसके वियोग की व्यंजना को करूण रूप प्रदान करती है. अत्यन्त विस्तृत रूप में संयोग-वियोग, हर्ष, करूणा जैसी संवादी-विवादी मिश्र भावों की वक्रता तथा सूक्ष्मता इस रचना में देखी जा सकती है.[1] इस रचना में दार्शनिकता उल्लेखनीय है. पत्नि की स्मृति जीवन का संबल बन गई है, उसके कारण पत्नी के प्रति अनुराग की प्रामाणिक दृढता परवर्ती रचनाओं में विशेष रूप से व्यंजित हुई है.[2]

एकान्त के प्रति अनुभूति व्यक्त करने के लिए ठूँठ को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया गया है.

ठूँठ यह है आज
गई इसकी कला,
गया है सकल साज
अब यह वसंत से होता नहीं अधीर,
पल्लवित झुकता नहीं अब यह धनुष-सा,
कुसुम से काम के चलते नहीं है तीर,
छाँह में बैठते नहीं पथिक आह भर,
झरते नहीं यहाँ दो प्रणयियों के नयन-नीर,
केवल वृध्द विहग एक बैठता कुछ कर याद.[3]

इस प्रतीक द्वारा एकान्त के साथ जुडी हुई निष्क्रियता, उदासीनता, निरर्थकता, विषण्णता आदि अनुभूतियों का भी संकेत किया गया है.

---

१ - निराला, अनामिका, पृष्ठ ६९.
२ - निराला, आराधना, गीत, ११,२९.
३ - निराला, अनामिका, पृ. १२९.

एकान्त भाव की इस रचना में विषाद या अवसाद के भाव को कलात्मक सूक्ष्मता से व्यंजित किया है. अन्यत्र एकान्त द्वारा प्रियजन के वियोग और शोक, शारीरिक-मानसिक शिथिलता, पराजय, निराशा तथा ईश्वर के प्रति शरण या प्रपत्ति की अनुभूतियाँ व्यक्त हुई हैं.[1] इन रचनाओं में भावों की ऋजुता दृष्टव्य है. कहीं एक ही रचना में एकान्त के प्रति अनुभूति व्यक्त करते हुए उसके द्वारा उद्दीप्त विषाद या अवसाद के भाव की व्यंजना का मिला-जुला रूप भी मिलता है.[2]

स्मृति और एकान्त द्वारा उद्दीप्त एवं पुष्ट विषाद या शोक की अनुभूति मृत्यु की कामना में परिणत हुई देखी जा सकती है. इस परिणति द्वारा एक विशिष्ट दृष्टिकोण (attitude) की अभिव्यक्ति हुई है. कहीं सामान्य रूप में जीवन के छोर पर खडे रहकर मृत्यु की कल्पना की है, और कहीं मृत्यु के छोर पर खडे रहकर जीवन का सिंहावलोकन किया है.

मृत्यु की चेतना वार्धक्य या रोग-शोक जर्जरित अंतिम जीवन की विषमता के कारण दूसरे या तीसरे कालखण्ड में ही व्यक्त नहीं हुई परंतु प्रथम कालखण्ड में भी इसकी अनुभूति की प्रौढ एवं गंभीर अभिव्यक्ति मिलती है. अेक स्थान पर मृत्यु की श्रृंखला को ही संसृति का पुष्ट रूप कहकर उसे जीवन का चरम परिणाम माना है.

---

१ - निराला, परिमल, पृष्ठ ९८, अणिमा, पृ. २०, अर्चना पृ. २२, आराधना गीत ९२.

२ - निराला, अणिमा, पृष्ठ ५५.

मृत्यु की श्रृंखला ही
संसृति का सुष्ठु रूप,
धीर पद अवनति ही
चरम परिणाम यहाँ...[1]

जीवन पर मरण का आवरण छाया है, अथवा मरण जीवन में ही अंतर्निहित है.[2] जीवन में ही मृत्यु का विवर है, जिसमें छिपा हुआ काल-सर्प किसी को भी छोडने वाला नहीं है.[3] आशय यह कि मृत्यु अवश्यंभावी है.[4] वह मरण सरिता है, जो सब को बहा ले जायेगी.[5] वह सर्वोपरि है, जहाँ मृत्यु है वहाँ सब पराजित है. अतः मृत्यु-पथ के पथिक के रूप में मृत्यु की शरणागति स्वीकार की है.

विवश होकर मिले शंकर
कर तुम्हारे हैं विजय वर
चरण पर मस्तक झुकाकर
शरण हूँ, तुम मरण सरिता.[6]

---

१ - निराला, परिमल, पृष्ठ २०७.
२ - निराला, गीतिका, पृष्ठ १०२.
३ - वही, पृष्ठ ९३.
४ - निराला, अर्चना पृष्ठ ११७.
५ - निराला, बेला, पृष्ठ ५६. ६ - निराला अर्चना, पृ. ११७.

निरालाजी ने मृत्यु की, माँ रूप में कल्पना करते हुए उसके विराट एवं संहारक स्वरूप की कल्पना की है.[1] जो विवेकानन्द के प्रभाव के कारण है. इस आस्था के रूप में मृत्यु की अनुभूति के फलस्वरूप मृत्यु के प्रति भय नहीं मिलता, बल्कि उसका आह्वान किया गया है, क्यों कि वही मुक्ति प्रदान करने वाली है.[2] उसके प्रति एक प्रकार के विशिष्ट आकर्षण तथा उसकी मधुर अनुभूति की अभिव्यक्ति मिलती है. अतएव माँ के कोमल रूप में भी मृत्यु की कल्पना की गई है.[3]

मृत्यु के छोर पर रहकर मरण-ताल पर चल रहे जीवन के मन्द-चरण की अनुभूति व्यक्त की गई है.

> अंधकार के दृढ़ कर
> बंधा जा रहा जर्जर,
> तन उन्मीलन निःस्वर,
> मन्द - चरण मरण ताल,[4]

परंतु मृत्यु के छोर से देखने पर यह अनुभूत होता है कि वस्तुतः मृत्यु ही जीवन की निर्मात्री है.

---

१ - वही. पृ. ११७, परिमल, पृ. १५०, १५१, अनामिका, पृ. ११०-११. नये पत्ते, पृष्ठ ९१.

२ - निराला, अनामिका पृ. ९५, वही, पृ. १२६, बेला, पृ. ९५. आराधना, गीत ६९.

३ - निराला, गीतिका, पृ ७३, अर्चना पृ. ९९, गीतगुंज, पृ. ५२.

४ - निराला, अनामिक, पृष्ठ ९२.

मृत्यु - निर्माण प्राण नश्वर,
कौन देता प्याला भर - भर ?
मृत्यु की बाधाएँ, बहु द्वन्द
पार कर जाते स्वच्छन्द
तरंगों में भर अगणित रंग,
जंग जीते, मर हुए अमर.[१]

मरण ही जीवन है,[२] अत: जिसने मरण का वरण किया है उसने जीवन को भर दिया है.[३]

प्रथम कालखण्ड की रचनाओं में उक्त विषय के भावों की वक्रता और सूक्ष्मता विशेष रूप से दृष्टव्य है. कहीं कहीं विषाद और करुणा की अनुभूति के साथ मिश्र भाव के रूप में उक्त अनुभूति मिलती है. परवर्ती रचनाओं में यह भाव एकांत रूप में मिलता है. इन रचनाओं में उक्त विषय पर भाव की ऋजुता के साथ कहीं कहीं सूक्ष्मता भी मिलती है, विशेषत: दूसरे कालखण्ड की रचनाओं में.

४ - ३ प्रेम :: भक्ति या प्रपत्ति के अंतर्गत जिस प्रेम या अनुराग की व्यंजना हुई है उससे यह प्रेम भिन्न है. भक्ति या प्रपत्ति के अंतर्गत प्रेम, जीवन की प्रमुख वृत्ति ( ) तथा प्रवृत्ति के रूप में व्यक्त हुआ है, जबकि यहां प्रेम की अनुभूति जीवन के अंग के रूप में अभिव्यक्त हुई है. वहां प्रेम की परिणति समर्पण या शरणागति में हुई है, इस विषय के अंतर्गत प्रेम की परिणति भोग या उपभोग में हुई है.

---

१ - निराला, अनामिका, पृष्ठ ९३.
२ - निराला, ~~अनामिका~~, अपरा, पृष्ठ. १५५.
३ - वही, १३३.

आशय यह कि इस विषय के अंतर्गत स्त्री-पुरुष के रतिभाव तथा उससे संबंधित अन्य अनुभूतियों की व्यंजना हुई है। कहीं उक्त अनुभूतियों का माध्यम बनकर और कहीं उनके पोषक रूप में प्रकृति का वर्णन किया गया है।

संयोग की अनुभूतियां मौन एवं मुखरित दोनों रूपों में मिलती हैं। परिमल की मौन रचना[1] में संयोग की मौन अवस्था का वर्णन मिलता है, परंतु वहां मौन शब्द का प्रयोग अकाव्यात्मक प्रतीत होता है। आशय या विषय (Content) का निगिरण न होने के कारण, वह व्यंग या वक्र रूप में नहीं परंतु अभिधा या स्थूलरूप में प्रकट हुआ है। इसके विपरीत अनामिका की सर्वप्रथम रचना[2] में उक्त अनुभूति की सूक्ष्मता देखी जा सकती है। मौन में प्रेम की प्रामाणिकता तथा प्रेम के विश्वास का जो स्वीकार निहित रहता है, वह इस रचना में दृष्टव्य है। अन्यत्र नयनों के नयनों से[3] गोपन संभाषण द्वारा प्रेम की अभिव्यक्ति स्मृति से पुष्ट होकर आई है। कहीं इसी दृष्टि का मौन नयनों को बांधा[4] गया है, फलस्वरूप स्नेह-सुख-संवेदना समस्त सृष्टि में परिव्याप्त हो गई है।

मौन संयोग की प्रेमानुभूति का अधिक स्पष्ट तथा विकसित रूप प्राय: प्रकृति के माध्यम से व्यक्त हुआ है। निरालाजी की प्रथम रचना 'जुही की कली'[5] में संयोग श्रृंगार, कली तथा पवन के माध्यम से ही[6] व्यक्त हुआ है। इसी प्रकार की अनुभूति तथा अभिव्यक्ति अन्यत्र मिलती है, परंतु कहीं अंत में दर्शन तथा

१- निराला, परिमल, पृष्ठ २६
२- जैसे हम हैं, वैसे ही रहें
३- निराला, अनामिका, पृष्ठ १५१
४- निराला, गीतिका, पृष्ठ ६६
५- निराला, परिमल, पृष्ठ १६१
६- निराला, गीतिका, पृष्ठ ४०

योग का अपेक्षाकृत अधिक ~~स्वच्छ~~ प्रकट आधार दिया गया है।[1] पौराणिक-रूपक द्वारा संयोग की व्यंजना गीतिका के १४वें गीत में दृष्टव्य है। यहां प्रकृति के उपकरणों का आधार लेकर शंकर की प्राप्ति के हेतु पार्वतीजी के तप की व्यंजना की गई है। संयोग-पूर्व एकान्त-भाव की ऋजुता[2] यहां देखी जा सकती है। संयोग की अत्यंत मुखरित अभिव्यक्ति होली के वर्णनों[3] में मिलती है। परंतु इनमें कहीं स्थूलता नहीं दिखाई देती। सूक्ष्मता के साथ विविध अनुभावों की अभिव्यक्ति इन रचनाओं की विशिष्टता है।

वियोग की अनुभूति का एकान्त भाव के रूप में चित्रण प्रायः कम[4] हुआ है। बेला के ५२वें गीत में इस प्रकार की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। अन्यत्र स्मृति द्वारा पुष्ट वियोग वर्णन मिलता है। प्रकृति के माध्यम से वियोग[5] की वेदनानुभूति कतिपय रचनाओं में व्यक्त हुई है। इन रचनाओं में सरिता या बादल को संबोधित करते हुए इन्हीं के द्वारा पुष्ट होती हुई वेदना व्यक्त की गई है।

परिमल की 'निवेदन'[6] रचना में मिश्र भाव की व्यंजना मिलती है। यहां संयोग की अवस्था में ही वियोग की कल्पना द्वारा करुण की परिणति हुई है। वस्तुतः संयोग की अनुभूति यहां प्रच्छन्न है। आरंभ से अंत तक क्रमशः वियोग

१- निराला, परिमल, पृष्ठ १९६-९७

२- निराला, गीतिका, पृष्ठ ४६, ६०

अर्चना, पृष्ठ ५०

३- निराला, परिमल, पृष्ठ ४१

४- निराला, गीतिका, पृष्ठ २१

५- निराला, गीतगुंज, पृष्ठ ३५

६- निराला, ~~[illegible]~~ परिमल, पृष्ठ ३२-३३

की अनुभूति का ही विलास हुआ है, जिसके अंतर्गत खेद, विषाद, वेदना आदि का समावेश है।

प्रायः अनेक रचनाओं में प्रेमिका की उक्तियों द्वारा हर्ष-विषाद की अनुभूतियां व्यक्त हुई हैं। कहीं पत्र-लेखन द्वारा प्रेमिका के वियोग को उभारने का प्रयास तथा प्रेम की निष्ठा की अभिव्यक्ति है। यहां समाज की[1] वैसी ही उपेक्षा बताई गई है, जैसी अनामिका के प्रथम गीत में मिलती है। अन्यत्र प्रेमी की निष्ठुरता को याद करते[2] हुए अपनी प्रेम-निष्ठा और प्रेमी में दृढ़ आस्था प्रेमिका द्वारा व्यंजित हुई है। प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई प्रेमिका की वेदना में भी प्रिय की निष्ठुरता का संकेत है। प्रिय की स्वीकृति 'हां' अस्वीकृति 'ना' के रूप में प्रतीक्षा, की पीड़ा[3] दे रही है, फिर भी प्रेमिका समर्पण की स्थिति से लौटने को तैयार नहीं। इससे भिन्न अन्यत्र[4] प्रिय की स्मृति तथा उसकी रूप-संवेदना द्वारा हर्ष की अनुभूति व्यक्त हुई है। गीतिका के पूर्व गीत में प्रेमिका की ही भावाभिव्यक्ति[5] है, परंतु वह प्रेमी की स्मृति द्वारा व्यंजित है, यह उसका वैशिष्ट्य है। इसके विपरीत परिमल की एक रचना में प्रेमी की[6] प्रिया के प्रति उक्ति में स्मृति द्वारा पुष्ट वियोग की अभिव्यक्ति मिलती है। इन रचनाओं में भावों की सूक्ष्मता के तथा वक्रता के साथ मिश्र भावों की व्यंजना देखी जा सकती है।

प्रेमानुभूति के अनुभावों का वर्णन प्रायः अनेक रचनाओं में मिलता है। कहीं

१- निराला, गीतिका, पृष्ठ २३

२- वही, पृष्ठ ३०

३- वही, पृष्ठ ४१

४- वही, पृष्ठ ३७

५- वही, पृष्ठ ७

६- निराला, परिमल, पृष्ठ ६४

सद्यः जागृत प्रेमिका के रूप-चित्रण के साथ उसके अनुभावों का वर्णन करते हुए वासना से मुक्त त्याग में तागी हुई मुक्ता के रूप में नायिका का उदात्त वर्णन किया है.

हेर उर - पट, फेर मुख के बाल,
लख चतुर्दिक चली मन्द मराल,
गेह में प्रिय - स्नेह की जय-माल,
वासना की मुक्ति, मुक्ता
त्याग में तागी. १

प्रिय मिलन के समय अभिसारिका की लज्जा, संकोच, स्नेह, प्रिय की स्मृति, समर्पण की अनुभूति आदि की अत्यन्त कलापूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है.[२] अन्यत्र संयोग श्रृंगार के अनुभावों में स्पर्श-संवेदना के अंतर्गत चुंबन की अनुभूति, स्थिति एवं सुख का अत्यन्त कलापूर्ण वर्णन मिलता है.

चुम्बन - चकित चतुर्दिक चंचल,
हेर, फेर मुख, कर बहु सुख- छल,
कभी हास, फिर त्रास, सांस-बल
उर -सरिता उमगी.[३]

---

१ - निराला, गीतिका, पृष्ठ, ४.
२ - निराला, परिमल पृष्ठ १०७, गीतिका, पृष्ठ ८.
३ - निराला, गीतिका पृष्ठ ३३,

४ - ४ प्रकृति : : प्रकृति की स्वतन्त्र अनुभूति की काव्यात्मक अभिव्यक्ति करते हुए छायावादी कवियों ने संस्कृत काव्य की परंपरा को विशेष रूपसे जीवित किया है. इसके अंतर्गत निरालाजी ने प्रकृति की लघु एवं विराट, कोमल तथा कठोर अनुभूतियाँ अत्यंत कलात्मक रूप में व्यक्त की है. इसके अतिरिक्त अन्य भावों या अनुभूतियों को अनुकूलता अथवा पुष्टि प्रदान करने के लिए भी प्रकृति का प्रयोग निरालाजी ने किया है. साथ ही प्रकृति को माध्यम या निमित्त बनाकर मानवीय क्रिया-कलाप तथा अनुभूतियों का चित्रण किया है. जिसे निरालाजी ने प्रकृति का मानवीकरण (Personification) कहा है.[१]

स्वतन्त्र अनुभूति के अंतर्गत किये गये ऋतुवर्णन में वर्षा तथा वसंत की अधिकता मिलती है. तीसरे कालखण्ड में ऋतुवर्णन की सर्वाधिक संख्या मिलती है, जिसमें वर्षा-वर्णन का बाहुल्य है. प्रथम कालखण्ड में वसंत-वर्णन का आधिक्य है जबकि दूसरे कालखण्ड में इस विषय पर अपेक्षाकृत कम लिखा गया है.

वसंत : ऋतुपति वसंत का आह्वान करते हुए कहीं जीवन के उत्साह की व्यंजना और पुष्टि हुई है.[२] और कहीं युवतियों के उत्साह और आनन्द की अभिव्यक्ति हुई है.[३] इसी प्रकार वसंत वर्णन द्वारा जीवन के उन्माद की अनुभूति उर्दू काव्य-शैली के आधार पर भी व्यक्त हुई है.

---

१ - निराला, प्रबंध प्रतिमा, पृष्ठ..

२ - निराला, परिमल, पृष्ठ, ८६.

३ - वही, पृष्ठ ४३.

अ - हँसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन.
हृदय के हार के होते हैं ये बहार के दिन.
निगह रुकी कि केशरों की वेशिनी ने कहा,
सगंध-भार के होते हैं ये बहार के दिन.

आ - हँसी के झूले के झूले हैं वे बहार के दिन.
सलास वृन्तों के फूले हैं वे बहार के दिन.
पुटों में होठों के कलियों का राज दब न सका,
सुगंध से खुला, खुले हैं वे बहार के दिन.[1]

मानवीकरण द्वारा वसंत के वर्णनों में भाव की सूक्ष्मता तथा वक्रता का रूप देखा जा सकता है. प्राय: कली और पवन के माध्यम से नायक-नायिका के श्रृंगार की अनुभूतियाँ ही विशेष रूप से व्यक्त हुई है. अन्यत्र शंकर - पार्वती का पौराणिक रूपक खडा करते हुए,[2] पार्वती की स्नेह-साधना को वसंत वर्णन द्वारा प्रस्तुत किया गया है.[3]

बन-बेला में बेला द्वारा प्रेरणा तथा उत्साह प्रदान करते हुए समर्पण की अनुभूति व्यंजित की गई है.[4] गीतिका के तीसरे गीत में वसंत तथा प्रकृति का स्वतन्त्र एवं मानवीकरण की मिली-जुली ( ) अनुभूति द्वारा चित्रण किया है. यहाँ मिश्र भाव की अत्यन्त कलात्मक व्यंजना हुई है.[5] वसंत के व्यापक सौंदर्य की अनुभीति गीतिका के ४६ वें गीत में देखी जा सकती है.[6] इसी प्रकार की व्यापकता गीतगुंज की प्रथम रचना में भी मिलती है. परंतु वहाँ वसंत को सरस्वती की माला के रूप में कल्पित किया गया है. उदात्त भाव - व्यंजना

---

१ - निराला, बेला, पृष्ठ २१,२२.
२ - निराला, परिमल, पृष्ठ १९१,१९४,१९६,; गीतिका पृष्ठ,६,४०.
३ - निराला, गीतिका पृ. १६. ४ - निराला, अनामिका, पृ.८८-९१.
५ - निराला, गीतिका, पृ. ५. ६ - वही, पृ. ५१.

इस रचना की विशेषाता है. यहाँ प्रकृति तथा देवी दोनों के स्नेह की मिली-जुली अनुभूति दृष्टव्य है.[1] अथवा प्रकृति को देवी के रूप में ही अनुभूत किया गया है.

इनके अतिरिक्त वसंत की स्वतन्त्र अनुभूति की अभिव्यक्ति अन्य अनेक रचनाओं में हुई है.[2] वसंत के साथ फागुन का भी स्वतंत्र वर्णन मिलता है.[3] जहाँ एकान्त भाव का प्राधान्य है.

वर्षा : वर्षा ऋतु की विविध अनुभूतियाँ अनेक रचनाओं में व्यक्त हुई है. निराला जी को वर्षा ऋतु विशेष रूप से प्रिय थी, इसीलिये उसकी अनुभूतियों का वर्णन स्वतंत्र और मिश्रित दोनों रूपों में मिलता है. वर्षा का स्वतंत्र वर्णन और वियोग की अनुभूति दोनों का तुल्यबल रूप परिमल 'की 'गीत' कवितामें देखा जा सकता है. वर्षा के कारण प्रिय के: अभावका अधिक तीव्र रूप प्रेमिका की विरहानुभूति में उभरता है. वियोग के समानही संयोग श्रृंगार की अनुभूति को भी वर्षा द्वारा अन्यत्र पुष्ट किया है. इस रचना में प्रेमिका के हर्ष, उल्लास, चपलता, आतुरता आदि अनुभूतियों की अनुभाव के रूप में सरस व्यंजना हुई है. शब्द, स्पर्श, रस, रूप, तथा गंध की संवेदना का अत्यन्त कलात्मक नियोजन इस रचना में दृष्टव्य है.

अन्यत्र वर्षा का वर्णन नायिका के रूप में मानवीकरण द्वारा[6] किया गया है. जिसमें वर्षाका सौंदर्यात्मक रूप वर्णित है. इस प्रकार वर्षा की स्वतन्त्र अनुभूति अनेक रचनाओं मे व्यक्त हुई है. विशेषता: अंतिम

---

१ - निराला, गीतगुंज, पृष्ठ २२.
२ - निराला, अर्चना, पृष्ठ ४८,८१,९२, आराधना.गीत,६०,६२, गीतगुंज पृ. २५-६.
३ - वही, पृ. ४९,८०.
४ - निराला, परिमल प..१०२,३.
५ - निराला, गीतिका, पृ. १५.
६ - वही, पृ. ५४

कालखण्ड के अंतर्गत गीतगुंज मे. कहीं कहीं इस प्रकार की रचनाओं में ग्राम्यजीवन की पृष्ठभूमि के भी दर्शन होते है.[1] अन्यत्र भी वर्षा का स्वतन्त्र रूप से वर्णन मिलता है, जिसमें उन्माद, उत्साह तथा आनन्द की अनुभूतियों के साथ भाव की ऋजुता मिलती है.[2]

वर्षा के स्वतन्त्र वर्णन के साथ ही वर्षा स्तवन की भी स्वतन्त्र अनुभूति तीसरे कालखण्ड में है.[3]

वर्षा वर्णन के प्रसंग में बादल के प्रति व्यक्त की गई अनुभूतियां के विविध रूप देखे जा सकते है. परिमल में बादल का मानवीकरण करते हुए, उसे नायक तथा पृथ्वी की नायिका रूप में कल्पना करते हुए उनके प्रेम की व्यंजना की गई है, अथवा कृष्ण के रूप में बादलों की कल्पना करते हुए यमुना की प्यास बुझाने का आग्रह किया किया गया है.[4] अन्य रचनाओं में बादल को शिशु रूप में कल्पित किया है.[5] पांचवें बादल राग में इनके विपरीत एकदम निराकार रूप में बादल की विराट अनुभूति व्यक्त हुई है.[6]

अन्यत्र बादल का स्वागत करते हुए,[7] उसको उदबोधित कर नवजीवन तथा नवीन चेतना का संचार करने की प्रार्थना की गई है.[8]

१- निराला, बेला, पृष्ठ ३८, नये पत्ते, पृष्ठ ९६, गीतगुंज पृष्ठ ३२-३.
२- निराला, अर्चना, पृष्ठ ५२, १०२ : आराधना पृष्ठ १३: गीतगुंज पृ.४५, ४६, ५०.
३- निराला, आराधना, गीत, ३, २६: गीतगुंज पृष्ठ ३०.
४- निराला, परिमल पृष्ठ १७६.
५- वही, पृष्ठ १८२. ६. वही पृष्ठ १८४.
७- निराला, गीतगुंज पृष्ठ ३६.
८- निराला, अनामिका, पृष्ठ ८२, गीतिका पृष्ठ ५६.

शृंगार[१] तथा वियोग[२] की अनुभूतियों को पुष्ट करती हुई अनुभूतियां भी बादल के अन्य रूपों को स्पष्ट करती हैं।

प्रकृति के उक्त प्रमुख अंगों के अतिरिक्त ऋतुरानी के रूप में शरद,[३] तथा ग्रीष्म,[४] एवं शिशिर[५] की भी एकान्त भाव के रूप में अनुभूतियां व्यक्त हुई हैं।

प्रकृति की स्वतन्त्र[६] अनुभूतियों के अंतर्गत संध्या का भी वर्णन प्रथम कालखण्ड में मिलता है।

इनके अतिरिक्त पृष्ठभूमि[७] के रूप में वसंत तथा ग्रीष्म की अभिव्यक्ति भी प्रथम कालखण्ड में दृष्टव्य है।

ऋतुओं की स्वतन्त्र अनुभूतियों के साथ उनके मिश्र रूप की भी व्यंजना[८] हुई है। कहीं वर्षा, शरद, शीत, वसंत तथा ग्रीष्म का मिश्र[९] रूप व्यक्त हुआ है। अन्यत्र षड्ऋतुओं की मिश्र अनुभूतियां नियोजित की गई हैं। ऋतुओं[१०] के अतिरिक्त चातुर्मास वर्णन भी आराधना के अंतिम गीत में दृष्टव्य है।

१- निराला, अनामिका, पृष्ठ ८१

२- निराला, गीतगुंज, पृष्ठ ३५

३- निराला, परिमल, पृष्ठ १३८; आराधना, गीत २३; गीतगुंज, पृ० ४१, ४८, ५५

४- निराला, अनामिका, पृष्ठ ५२; बेला, पृष्ठ १७

५- निराला, गीतिका, पृष्ठ १०, ८८

६- निराला, परिमल, पृष्ठ १३५; गीतिका, पृष्ठ ७८

७- निराला, अनामिका, पृष्ठ २२, ८३

८- निराला, बेला, पृष्ठ ३०

९- निराला, नये पत्ते, पृष्ठ ६५

१०- निराला, आराधना, गीत ९६

इन रचनाओं में मिश्र भावों की व्यंजना के साथ सूक्ष्मता तथा परंपरा से भिन्न अनुभूतियों की विशिष्ट अभिव्यक्ति देखी जा सकती है।

४-५ करुणा : : करुणा की अनुभूति वेदान्त से पुष्ट होकर आई है। `अधिवास`[१] शीर्षक रचना में `अधिवास` के विषय में प्रश्न उठे हैं। अधिवास, निवृत्ति तथा मोक्ष में है या प्रवृत्ति तथा गति में है ? इसके उत्तर में बताया है कि तब तक गति का शेष संभव नहीं, जब तक हृदय में करुणा का आवेश विद्यमान है अर्थात् जब तक इस जीवन और जगत के प्रति आस्था-जन्य आकर्षण है, दार्शनिक शब्दावली में जब तक माया के बंधन ने जकड़ रखा है, तब तक जीवन की गति नहीं रुकेगी और पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति नहीं मिलेगी।

निरालाजी के अनुसार इस माया रूपी अनेक नामधारी संसार का साक्षी `मैं` है। इस `मैं` के कारण ही संसार का अस्तित्व है।[२] परंतु इस मैं की साक्षी का सही उपयोग करुणा तथा सहानुभूति की अभिव्यक्ति से ही हो सकता है। अत: वे `मैं` शैली अर्थात् करुणा-सहानुभूति तथा स्नेह की शैली अपनाकर दीन-दुखियों को गले लगाना अधिक श्रेयस्कर समझते हैं, तथा वह निवृत्तिपरक मुक्तिजन्य अधिवास छूट जाने का रंज नहीं करते।

आशय यह कि इस विषय के अंतर्गत समाज के प्रति करुणा तथा सहानुभूति की अनुभूतियां व्यक्त हुई हैं। कहीं इसी अनुभूति के कारण समाज की विषमता, ढोंग, गुरुडम आदि बुराइयों के प्रति तीखे व्यंग की अनुभूति भी प्रकट की गई है। अत: उक्त विषय के अंतर्गत समाज या मानवीय सभ्यता के प्रति करुणाजन्य दो प्रकार की अनुभूतियां देखी जा सकती है--(१) भावात्मक,

१- निराला, परिमल, पृष्ठ १२४

२- निराला, प्रबंध प्रतिमा (प्रथम संस्करण), पृष्ठ ३३४

(२) व्यंगात्मक.

भावात्मक करूणा की अनुभूति दीन-दलित वर्ग के प्रति और विशेषाकार भिक्षुक और नारी के प्रति विशेषा रूप से दिखाई देती है.

कहीं कहीं भिक्षुक की दयनीय दशा को प्रस्तुत करते हुए उनके जीवन की विडम्बना को व्यक्त किया है,[१] अन्यत्र ढोंगी-धार्मिकों पर व्यंग करते हुए भिक्षुक के रूप में मानव की उपेक्षा की ओर संकेत किया है. बेला की ४५ वीं रचना में भिक्षुक को विविध दृष्टिकोणों से प्रस्तुत करते हुए और उसके प्रति भावात्मक करूणा व्यंजित की है तथा दूसरी ओर समाज पर व्यंग कसा है. उक्त दोनों अनुभूतियों का अत्यंत कलात्मक विलयन तथा मिश्रभाव की वक्रता यहाँ दृष्टव्य है.

भीख माँगता है अब राह पर, मुठ्ठी भर हड्डी का यह नर .
एक आँख आज के बानिज की, पराधीन होकर उस पर पडी,
कहा कला ने, कल का यह नर.
एक आँख तरूणी की जो अडी, कहा, यहाँ नहीं कामना सडी,
इससे मैं हूँ कितनी सुंदर.[३]

इसी प्रकार दुखी निराधार भारत की विधवा की दयनीय दशा प्रस्तुत करते हुए भारत के रूढीवादी तथा संकुचित विचारों से ग्रस्त समाज पर प्रच्छन्न रूप से व्यंग कसा है. इसके साथ ही विधवा की पवित्रता तथा पति-निष्ठा के संकेत द्वारा उसके उदात्त जीवन का निर्देश भी किया है.[४] शारीरिक परिश्रम करती हुई स्त्री का हृदय-द्रावक वर्णन करते हुए भारत में स्त्री समाज की उपेक्षा तथा डिम्बना व्यक्त की है तथा पूंजीवादी समाज पर प्रच्छन्न व्यंग कसा है.[५] कहीं कुरूप लडकी के करूणाजनक अविवाहित जीवन का निर्देश करते हुए समाज के हाथों उसकी उपेक्षा तथा अवहेलना तथा उसकी माता की चिन्त और वेदना

---

१ - निराला, परिमल पृष्ठ १३३. २ - निराला, अनामिका पृष्ठ २२.
३ - निराला, बेला पृष्ठ ६१. ४ - निराला, परिमल पृष्ठ १२६.
५ - निराला, अनामिका पृष्ठ ७६.

को व्यक्त किया है.[१] अत: नारी समाज को सामाजिक बंधनों से मुक्तहोने का आह्वान किया गया है.[२] इसी प्रकार कृषक[३] तथा दलित वर्ग[४] के प्रति करुणा की अत्यन्त व्यापक अनुभूति की व्यंजना हुई है.[५] इन रचनाओं में सामान्य रूप से भावों की ऋजुता और कहीं कहीं भावों की स्थूलता भी मिलती है.

समाज की स्वार्थांधता, लोलुपता तथा ढोंग, गुरूडम पर स्वतन्त्र रूप से,[६] एवं दीन-दलित वर्ग की करुण दशा के साथ प्रच्छन्न रूप से, व्यंग की अनुभूतियाँ प्रथम कालखण्ड में अत्यन्त अल्प मात्रा में व्यक्त हुई हैं. परंतु द्वितीय कालखण्ड में उक्त व्यंगात्मक अनुभूतियों की मात्रा सर्वाधिक है तथा तीसर कालखण्ड में जरा कम.

इस कालखण्ड में साधारण जनजीवन के स्थूल चित्र भी मिलते हैं.[८] अन्यत्र आर्थिक विषमता तथा उपार्जन की अक्षमता, तथा आर्थिक संकट के कारण कठोर जीवन और नेताओं की उपेक्षा,[९] जीवन के केन्द्र के रूप में धन का सर्वोपरी सर्वोपरि स्थान,[१०] योग्यत की उपेक्षा तथा अवसरवादिता,[११] मानव-जीवन

१- निराला, नये पत्ते, पृष्ठ. १५.   २ - निराला, अनामिका, पृष्ठ १२७.
३- निराला, परिमल. पृष्ठ. १८६.   ४ - निराला, गीतिका, पृष्ठ १२.
५- निराला, परिमल, पृष्ठ १४४; अनामिका पृष्ठ ५५, आराधना पृष्ठ १६.
६- वही, पृष्ठ १५५.   ७ - वही, पृष्ठ १७१.
८- निराला, अणिमा, 'यह है बाजार' 'सड़के किनारे'
९- निराला, बेला पृष्ठ ५४, आराधना गीत २०.
१०- निराला, अणिमा, पृष्ठ १०३.
११- निराला, आराधना, गीत ७२.

की विडम्बना और आधुनिक जीवन की विकट स्थिति,[१] पूंजीवाद तथा श्रमिक समाज का संघर्ष,[२] अपने हितों के लिए समाज में तनाव की स्थिति, भेदभाव,[३] जमींदार तथा बेकारों की विरोधात्मक जीवन दशा,[४] असहाय नारी के प्रति वासना, लोलुपता का प्रदर्शन तथा संस्कारों का दम्भ,[५] आदि से संबंधित विविध अनुभूतियां व्यंगात्मक रूप में व्यक्त हुई हैं. परंतु अन्यत्र समाज की जडता को देखकर[६] सामाजिक असमानता[७] का परिहास तथा समानता की कामना भी व्यक्त की गई है. इसके अतिरिक्त कृषक वर्ग की अधिकारी-वर्ग के हाथों प्रताडना बताते हुए अधिकारियों के प्रति व्यंग, तथा किसानों के प्रति सहानुभूति व्यंजित की है. प्राय:[८] ये वर्णन स्वातन्त्र्य-पूर्व भारत के कृषक समाजको लक्षित लिखे गये है.

इस प्रकार अन्यत्र आधुनिक सभ्यता पर व्यंग करते हुए वैज्ञानिक जडता, स्वार्थांधता, हिंसा, भोग आदि के रूप में, पश्चिम तथा पश्चिम से प्रभावित भारतीय जीवन के खोखलेपन को उदघाटित किया है.[९]

प्राय: उक्त प्रकार की रचनाओं में भाव की एकान्तिकता के साथ स्थूलता दिखाई देती है.

१- निराला, आराधना, गीत.

२- निराला, बेला पृष्ठ ७५.

३- निराला, नये पत्ते, पृष्ठ २७.

४- वही, पृष्ठ ४०.

५- वही पृष्ठ, ४६.

६- निराला, अर्चना, पृष्ठ ६९.

७- निराला, बेला, पृष्ठ ७८.

८- निराला, नये पत्ते, पृष्ठ ६१,६३,९२,९४, १०६.

९- निराला, अणिमा, 'भगवान बुद्ध के प्रति', नये पत्ते, पृष्ठ,२१,२३,२५.

४-६ जागरण :: इस विषय से संबंधित अनुभूतियां दो प्रकार से व्यक्त हुई हैं--

(१) जागरण की दार्शनिक अनुभूति की काव्य-कला के माध्यम से अभिव्यक्ति।
(२) राष्ट्रीय जागरण की अनुभूति की अभिव्यक्ति।

प्रथम के अंतर्गत आत्मविस्मृति के रूप में सुषुप्ति की, आत्म-परिचय के द्वारा जागृति में परिणति की अभिव्यक्ति हुई है।[1] सुषुप्ति का अर्थ मन का अज्ञान तथा जागृति का अर्थ ज्ञान की प्राप्ति या प्रिय के रूप में ईश्वर का साक्षात्कार है। इस दार्शनिक विचार को कहीं कहीं प्रकृति का आधार लेकर प्रस्तुत किया है।[2] इस प्रकार की रचनाओं में 'कली' प्राय: आत्मा के प्रतीक के रूप में आई है।[3] अन्यत्र शृंगार के अंतर्गत भी जागरण की काव्यात्मक अनुभूति व्यक्त हुई है। परिमल की 'जागरण' रचना में विशुद्ध दार्शनिक विचारों का प्रतिपादन हुआ है।[4]

राष्ट्रीय या जनजागरण के अंतर्गत वेदान्त के आधार पर मानव की श्रेष्ठता की घोषणा,[5] प्राचीन गौरव का स्मरण,[6] हिन्दुत्व तथा संगठन की महत्ता,[7] दीन दरिद्र की सेवा,[8] विषमताओं से संघर्ष की चेतना, सादगी और उच्च विचार के साथ स्वावलम्बन तथा आत्म विश्वास,[9] संगठित रूप में अग्रसर होकर बंधनों से

१- निराला, प्रबंध प्रतिमा, पृष्ठ २१५

२- निराला, परिमल, पृष्ठ १६१, १६४; गीतिका, पृष्ठ १०६

३- वही, पृष्ठ १३, १६८; अर्चना, पृष्ठ २२

४- निराला, परिमल, पृष्ठ २६०

५- वही, पृष्ठ २०२

६- वही, पृष्ठ २१५

७- निराला, बेला, पृष्ठ ६२

८- वही, पृष्ठ ६६

९- वही, पृष्ठ ८४

मुक्ति का प्रयास,[1] प्राणदान देकर भी धर्म का उत्कर्ष तथा ज्ञान का प्रसार,[2] तन-मन से परिश्रम तथा प्रगति आदि से संबंधित अनुभीतियों की अभिव्यक्ति द्वारा समग्र राष्ट्र तथा जन जीवन में जागृति लाने की कामना व्यक्त हुई है. कलात्मक जागरण की रचनाओं में भावों की सूक्ष्मता और वक्रता मिलती है, परंतु जनजागरण की रचनाओं में स्थूलता दिखाई देती है.

४-७ विद्रोह या क्रांति :: जनजीवन या राष्ट्रीय जीवन में चेतना उत्पन्न करने की भावना 'जागरण' के समान उक्त विषय के अंतर्गत भी मिलती है, परंतु फिर भी दोनों में अंतर यह है कि 'जागरण' में उक्त अनुभूति का रचनात्मक तथा सरल (   ) रूप मिलता है, जब कि विद्रोह या क्रांति की अनुभूति का रूप प्राय: विध्वंसात्मक (Destructive) तथा आक्रमक (Hostile) है. इस रूप को पुष्ट करने अथवा इसके द्वारा राष्ट्रीय चेतना को अधिक तीव्र बनाने के हेतु भारत के अतीत गौरव, वैभव, तथा वीरत्व से प्रेरणा ली है. उपरोक्त अनुभूतियां का अंतिम-लक्ष्य प्राचीन जीर्ण-शीर्ण- मूल्यों के स्थान पर जीवन के नवीन मूल्यों की स्थापना करना है. इस प्रकार उक्त विषय के अंतर्गत प्रथम, विद्रोह के द्वारा अभिनव अशिव का संहार करने के उपरान्त, शिवत्व तथा नवीन की स्थापना करते हुए जीवन में क्रांति लाने की अनुभूति व्यक्त की गई है.

विद्रोह तथा क्रांति के हेतु देवी का आह्वान करते हुए जीवन तथा जगत के अशिव तत्वों का संहार, तथा नव-सृजन की कामना व्यक्त की गई है.[4][5] अन्यत्र नश्वरता, सदियों के जीर्ण-शीर्ण बंधन तथा दुर्बल विश्वासों का नाश, स्त्री जाति

---

१ - निराला, अर्चना, पृष्ठ ३०.   २- वही पृष्ठ १०५.

३-- वही. पृष्ठ १०८,   ४- निराला, परिमल पृष्ठ १५०.

५ - निराला, अनामिका, पृष्ठ ६७.

की,पराधीनता की कारा से मुक्ति[१],शिक्षाक्रम में परिवर्तन और नये इतिहास का निर्माण[२],पूंजीवादी समाज तथा पूंजीवादी समाज व्यवस्था से संघर्ष तथा आर्थिक एवं सामाजिक समानता[३],एवं परम्परागत,प्राचीन तत्वों का अस्वि--अस्वीकार[४] इत्यादि के लिए विद्रोह करने की प्रेरणा तथा उत्साह प्रदान करने का प्रयास किया गया है।

विद्रोह या क्रांति की चेतना को पुष्ट करने के लिए भारत के अतीत ए ऐश्वर्य,वैभव,तथा सांस्कृतिक[५] मूल्यों के प्रति ध्यान आकृष्ट करते हुए प्रेरणा की अनुभूति व्यक्त की गई है।अन्यत्र भारत के गौरव को बढ़ाने वाली,तथा सम्मान और प्रतिष्ठा दिलाने वाली महान् संतानों के[६] महत् कार्यों का स्मरण दिलाकर उत्साह प्रदान करने का प्रयास किया गया है।कहीं जीवन के चक्र का संकेत करते हुए भारत के सांस्कृतिक जीवन का सिंहावलोकन[७] किया है तथा प्राचीन और वर्तमान जीवन के भेद की ओर ध्यान खींचा है।

उक्त रचनाओं में जो अनुभूतियां व्यक्त हुई हैं उनका लक्ष्य नवीन मानव का निर्माण तथा नवीन मूल्यों की स्थापना है। अत: नवीन का सहर्ष स्वागत किया गया है तथा रूढ़िवादी[८] आलोचकों के आगे नवीन का सैद्धान्तिक दृष्टि[९] से समर्थन किया गया है।अन्यत्र जीर्ण-शीर्ण का नाश करने की कामना,देवी के

१- निराला,अनामिका,पृष्ठ १३७

२- निराला,बेला,पृष्ठ ७६

३- वही,पृष्ठ ७८

४- निराला,आराधना,गीत ५५

५- निराला,परिमल,पृष्ठ ४५,८०; अनामिका,पृष्ठ ३७; अणिमा,पृष्ठ ३७

६- निराला,अनामिका,पृष्ठ २६,५८

७- निराला,नये पत्ते,पृष्ठ ३७

८- निराला,परिमल,पृष्ठ १०

९- निराला,आराधना,गीत ५५

प्रति प्रार्थना के रूप में व्यक्त हुई है,[१] तथा जीवन और जगत में व्यापक रूप से नवीनता की प्रतिष्ठा करने का वर प्रदान करने की आकांक्षा प्रकट की गई है।[२] इस प्रकार मानव-समाज को प्राचीन के स्थान पर नवीन की प्राप्ति के लिए आगे बढ़ने की सलाह दी गई है।[३]

उक्त प्रकार की रचनाओं में प्रायः एकान्त भाव मिलता है, जिसमें भावों की वक्रता लगभग सभी रचनाओं में देखी जा सकती है।

४-८ शेष दो कालखण्डों में मिलने वाला विषय- ग्राम्यगीत :: ग्राम्यगीतों के अंतर्गत गांव के साधारण जन-जीवन के हर्ष-उत्साह तथा उसकी सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का, ~~ग्राम्य~~ ग्राम्य-प्रकृति की पार्श्वभूमि में वर्णन मिलता है।[४] अन्यत्र किसानों की कठिनाइयों तथा उनपर अधिकारी-वर्ग के अत्याचारों की ओर संकेत किया गया है।[५]

उक्त रचनाओं में भावों की स्थूलता होने पर भी अनुभूतियों की प्रामाणिकता देखी जा सकती है। ग्राम्य-जीवन में घुलमिलकर ही उसकी विविध अनुभूतियां व्यक्त की गई हैं।

प्रथम तथा तृतीय ~~शेष दो~~ कालखण्डों में 'मंगलगान' के अंतर्गत जगत तथा समस्त मानव-समाज के मंगल या कल्याण की कामना व्यक्त की है। प्रथमखण्ड में देवी की वंदना तथा प्रार्थना करते हुए समस्त जगत को ज्ञान, तथा[६] नूतन जीवन के रूप में ज्योतिर्मय तथा जगमग करने की आकांक्षा प्रकट की है। अन्यत्र, सहज चमाल द्वारा

१- निराला, गीतिका, पृष्ठ १०

२- वही, पृष्ठ ३

३- निराला, बेला, पृष्ठ ७३; अर्चना, पृष्ठ ४१

४- वही, पृष्ठ ४१; नये पत्ते, पृष्ठ १७; आराधना, गीत ७, ७४, ७५

५- निराला, नये पत्ते, पृष्ठ ६१, ६३, ६२, ६४

६- निराला, परिमल, पृष्ठ २४; गीतिका, पृष्ठ ३

देश की समृद्धि और सुन्दरता,[२] विश्व को स्वर्ग[३] बनाने का प्रयास तथा साधना,[२] मानव-समाज की विजय तथा असुरों का नाश, प्रियजनों का कल्याण,[४] भारत का जय जयकार तथा अपवाद, भय, रोग, अवसाद आदि का नाश,[५] आदि (संबंधित) अनुभूतियां व्यक्त की हैं।

इन रचनाओं में भाव की एकान्तता तथा ऋजुता दृष्टव्य है।

४-६ :: दूसरे कालखण्ड में प्रशस्तिगान के रूप में विशिष्ट अनुभूति देखी जा सकती है। इसके अंतर्गत कुछ विशेष सर्वमान्य श्रेष्ठ व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा तथा आदर की अनुभूति व्यक्त हुई है। यद्यपि अनामिका में 'सम्राट एडवर्ड अष्टम्' के प्रति इस प्रकार की प्रथम रचना मानी जा सकती है। प्राचीन काल में भारतीय तथा हिन्दी साहित्य में इस प्रकार की प्रशस्तियां लिखी जा चुकी हैं। परंतु उनमें प्रायः श्रद्धेय या आदरणीय की अतिशय प्रशंसा या चाटुकारिता ही मिलती है, जबकि इन प्रशस्तिगानों में व्यक्ति विशेष के गुणों का उल्लेख तथा उनकी प्रशंसा भारत की सांस्कृतिक परंपरा के संदर्भ में करने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार ये रचनाएं मात्र प्रशस्तियां न रहकर सांस्कृतिक या चारित्रिक गान भी बन जाती हैं।

श्रेष्ठ अवतार पुरुष,[६] श्रेष्ठ संन्यासी,[७] श्रेष्ठ संत कवि,[८] श्रेष्ठ साहित्यिक,[९]

१- निराला, बेला, पृष्ठ ८८

२- निराला, आराधना, गीत ३४ : ३- वही, गीत ४४

४- वही, गीत ५३ : ५- वही, गीत ६१

६- निराला, अणिमा, पृष्ठ ३३; नये पत्ते, पृष्ठ ८६

७- वही, पृष्ठ ६८

८- वही, पृष्ठ २५

९- वही, पृष्ठ २६, २७, ५३

तथा अन्य श्रेष्ठ व्यक्तियों पर[1] ये प्रशस्तियां लिखी गई हैं। यहां यह दृष्टव्य है कि प्रचीन हिन्दी काव्य के समान इन रचनाओं में किसी आश्रयदाता की प्रशस्ति नहीं है, अपितु चरित्र एवं गुण में ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ व्यक्तियों को ही श्रद्धांजली या आदरांजली अर्पित की गई है। इन रचनाओं भावों की ऋजुता तथा प्रामाणिकता मिलती है।

उपरोक्त अध्ययन एवं विवेचन द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि निरालाजी की काव्य-अनुभूतियाँ तथा उनके विषयों का क्षेत्र अत्यंत व्यापक होने के ~~स्वरूप~~साथ वैविध्यपूर्ण भी है। अतः उक्त सभी अनुभूतियों तथा विषयों के कलात्मक सौन्दर्य का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत प्रबंध की सीमाओं तथा उसके कलेवर को देखते हुए संभव नहीं कहा जा सकता। इसीलिये निरालाजी की प्रमुख एवं श्रेष्ठ काव्य रचनाओं में से 'जुही की कली' तथा 'सरोज-स्मृति', इन दो रचनाओं को उदाहरण के रूप में लेते हुए, उनमें परिलक्षित भाव-कला का विस्तृत विवेचन निम्नलिखित रूप में किया जा रहा है।

'जुही की कलि' :-

आशय, विषय और अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह निरालाजी की क्रान्तिकारी रचना है। अर्थ की अन्विति की दृष्टि से इस कविता की काव्यानुभूति के स्वरूप को देखने के लिये इसे शब्द-समूहों के निम्नलिखित खंडों में विभाजित किया जा सकता है -

१- 'विजन-वन वल्लरी पर----------पत्रांक में(परिमल पृ-१६१)
२- 'वासन्ती निशा थी-----कली खिली साथ(परिमल,१६१-१६२)
३- 'सोती थी-------कौन कहे? (परिमल,पृ१६२)

१- निराला-अणिमा-पृष्ठ-५०-५१, बेला,पृष्ठ-५५

४- 'निर्दय उस नायक ने------प्यारे संग' (परिमल,१६२-६३)

१- विजन-वन वल्लरी पर----पत्रांक में ।

इस अंश में- 'विजन-वन-वल्लरी', 'सोती थी सुहाग भरी', 'स्नेह-स्वप्न-मग्न', तथा 'पत्रांक में'- इन शब्दों द्वारा एकान्त,कलि का नायिकात्व,वातावरण की शान्ति,तथा विलासिता व्यंजित होती है। निरालाजी ने प्रासाद के उपकरणों को तुलनीय बताते हुए इन शब्दों की व्यंजना स्पष्ट की है।[1] उक्त शब्दों द्वारा व्यंजित अनुकूल परिवेश में, कोमलांगी सुहागन तरुणी जुही की कली प्रिय के स्वप्न में,या स्वप्न में प्रिय के स्नेह में मग्न होने के कारण पत्तों में दुबक कर निद्राधीन हो गई है।यहां निरालाजी ने - पलंग पर्यंक पत्रांक इस प्रकार साम्य प्रदर्शित करते हुए विलासी नायिका तथा तदनुकूल विलासी उपकरण एवं वातावरण की ओर संकेत किया है।[2] इस अंश में नायिका,कली तथा वातावरण दोनों के पक्ष में संपूर्ण निष्क्रियता का संकेत है।परंतु 'स्नेह-स्वप्न-मग्न','सुहाग भरी' आदि शब्दों से रति भाव की व्यंजना स्पष्ट है।यहां यह उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत अंश में व्यंजित रति भाव को संयोग या वियोग की किसी एक कोटि में समाहित नहीं समझा जा सकता। यहां आपाततः विरह अवश्य दिखायी देता है,परंतु मानसिक दृष्टि से संयोग है।कली स्नेह-स्वप्न-मग्न है,परिणामस्वरूप प्रस्तुत अंश में न उद्दीप्त विरह का वर्णन है,न संयोग का सविस्तार चित्रण।इसी में वर-

---

१-निराला-प्रबंध प्रतिमा-पृष्ठ-२१२ , २- वही-पृष्ठ-२१२

वातावरण तथा नायिका के पक्ष में व्यंजित निष्क्रियता का औचित्य भी है। रति भाव का यह विशिष्ट रूप ही इस कविता को प्रतीकात्मक सिद्ध करता है।

२- 'वासन्ती निशा थी------कली खिली साथ।'

प्रथम अंश में नायिका का वर्णन करने के पश्चात् इस अंश में उक्त नायिका के वियोगी नायक (पवन) का वर्णन किया गया है। यहां 'वासन्ती निशा' और 'आई याद' द्वारा नायक की भूतकालीन स्मृतियां नायक के वियोग की अनुभूति को उद्दीप्त करती हैं। वियोग-भाव के उद्दीप्त होने के फलस्वरूप नायक जिस गति से नायिका के समीप पहुंचा है, उससे उसके वियोग की असह्यता की कल्पना सहज हो जाती है।

यहां 'विरह-विधुर-प्रिया' द्वारा कली के अनन्त यौवन[१] के साथ उसके सुहागन होने की भी पुष्टि होती है। साथ ही निरालाजी ने सुषुप्त कली को पवन के अभाव में, अदृश्य तत्व में लीन बताकर उसके दार्शनिक अर्थ[२] की ओर संकेत किया है। इस अंश में नायक उतना ही अधिक सक्रिय है, जितनी प्रथम अंश में नायिका निष्क्रिय है। अतः इस प्रकार इन दोनों स्थितियों (निष्क्रियता-सक्रियता) के विरोध द्वारा दोनों अंशों के बीच एक तनाव-सम्बन्ध (Tension) उत्पन्न कर नायिका तथा नायक के बीच, तथा इन दोनों की भाव-स्थिति के बीच संतुलन रखा गया है। इसी अंश में कार्य का प्रारंभ भी संकेतित है। यहां पूर्वांश का अनिर्दिष्ट रति-भाव नायक के पक्ष में स्फुट रूप प्राप्त करता है, तथा नायक की विरहात्मक रति स्पष्टतः व्यंजित है। पूर्वांश में संकेतित नायिका का स्वप्निल संयोग (स्नेह-स्वप्न-मग्न) और प्रस्तुत अंश में व्यंजित नायक का

१- निराला-प्रबंध प्रतिमा-पृष्ठ-२१३

२- निराला-प्रबंध प्रतिमा-पृष्ठ-२१३

?

(Continued)
विरह-भाव, परस्पर-विरोध, के कारण विशेष अर्थवत्ता तथा रूप को ग्रहण कर लेते हैं।

3- सोती थी-----------कौन कहे ?

यहां 'सोती थी' पर जैसे उक्त अंश में वर्णित नायक के उद्दीप्त वियोग की लहरें टकरा जाती हैं, और गति अवरुद्ध हो जाती है। 'सोती थी' द्वारा प्रथम अंश में वर्णित वातावरण की शान्ति और स्वच्छता का, अधिक घनीभूत या दृढ़ रूप व्यंजित होता है। यह स्थिति नायक की आतुरता और उत्कंठा को अधिक तीव्र अवश्य करती है, परंतु वह अपने आवेश कोसंयमित कर लेता है। सुप्त नायिका के सौन्दर्य से उद्दीप्त नायक, धीरे से उसके कपोल चूम लेता है, और वल्लरी डोल उठती है। सारे वातावरण में एक हल्की हलचल, या कंपन उत्पन्न होता है। परंतु नायिका की निष्क्रियता में कोई अंतर नहीं। इसके दो कारण माने जा सकते हैं, जो 'निद्रालस' और 'मतवाली' शब्दों द्वारा व्यंजित हैं। निद्रा के आलस में इतने हल्के स्पर्श का असर न होना स्वाभाविक है। परंतु इस शब्द को स्वीकार करने पर, स्नेह-स्वप्न की मग्नता का निर्वाह होने में बाधा उत्पन्न हो सकती है। अत: उस मग्नता के लिये पूरक 'मतवाली' (यौवन की मदिरा पी कर) शब्द का विकल्प दिया गया है। पहले अंश में नायिका की निष्क्रियता का स्वरूप, स्नेह और स्वप्न की मग्नता के परिणामस्वरूप है, और इस अंश में नायक की मंथरता भी कली के प्रति स्नेह के कारण है। इस प्रकार कवि ने एक ही आधार पर निष्क्रियता की दो कोटियों का या दो स्वरूपों का युगपत् समन्वय किया है। यहां नायिका की निष्क्रियता और नायक की क्रिया का मेल भी दृष्टव्य है।

4- 'निर्दय उस नायक ने------------- प्यारे संग।'

इस अंश में नायक के लिये 'निर्दय' विशेषण, निम्नलिखित

कारण के आधार पर सार्थक सिद्ध होता है-

जिस आवेश को नायक ने संयमित किया था वह नायिका की निष्क्रियता(नायक की दृष्टि से उदासीनता)और औद्धत्य के परिणाम-स्वरूप दुगना हो गया और उस उद्दीप्त स्थिति में नायक का मर्यादा या सहानुभूति को छोड़कर निर्दय होना स्वाभाविक है। निरालाजी ने नायक को निर्दय कहने में,कली के प्रति व्यंजित सहानुभूति की ओर संकेत किया है। उसने जितनी कोमलता से पहले नायिका के कपोल चूमे थे,उतनी ही कठोरता से,कपोल मसल दिये।यह विरोधात्मक क्रिया नायक के छूटे हुए संयम का संकेत देती है। 'चौंक पड़ी' की व्यंजना स्नेह स्वप्न की मग्नता,और मतवाली स्थिति की पुष्टि करती है।परंतु और अधिक व्यंजना इस रूप में देखी जा सकती है- नायिका स्वप्न में मग्न थी,और कदाचित इस मग्नता का कारण वह स्वप्न ही रहा होगा जिसमें नायक द्वारा उसके साथ इसी प्रकार की प्रणय-क्रीड़ा चल रही होगी,इसीलिये उस स्वप्न में यौवन की मदिरा का पान करने के कारण ही मतवालेपन में नायक के हल्के स्पर्श का कोई प्रभाव नहीं पड़ा होगा।इस बात की पुष्टि आगे नायिका के इन अनुभावों द्वारा होती है -'चकित चितवन निज चारों ओर फेर',प्रिय को पास देखकर नम्रमुखी हंसी और खिल उठी।नायक की कठोरता के कारण जाग उठते ही प्रथम वह चौंकी,और उसने चारों ओर देखा,क्योंकि जिसे स्वप्न समझ रही थी वह तो साकार रूप में दिखायी और अनुभूत हो रहा था।अत: उसी प्रिय को पास में देखकर, जिसने स्वप्न में उससे प्रणय-क्रीड़ा की और जो अभी उसके समीप है-- नायिका कुछ स्वप्न की स्मृति से और कुछ नायक की उपस्थिति से लजा गई और बरबस उसके मुख पर क्षण भर के लिये हंसी आ गई(स्वप्न की घटना पर)परंतु दूसरे ही क्षण साकार रूप में प्रिय का सहवास पाकर

वह खिल उठी।

निरालाजी ने इस रचना में वर्णित कलि की सुप्ति को आत्म विस्मृति तथा मन का अंधकार कहा है,तथा जागरण के बाद प्रिय साक्षात्कार को आत्म-परिचय और मन का प्रकाश बताया है।इस प्रकार कली की सुप्ति से जागरण की क्रिया तथा प्रिय-मिलन को ही उन्होंने पूर्ण मुक्ति कहकर सर्वोच्च दार्शनिक व्याख्या का प्रमाण माना है।[1] अस्तु।

प्रथम अंश की स्तब्धता के विरोध में यहां वातावरण का तीव्र आन्दोलन जो तनाव उत्पन्न करता है उसके फलस्वरूप बीच के दो अंशों में वर्णित वातावरण की स्थिरता को उभार मिलता है।साथ ही तीसरे अंश में जो गति रुक गई थी,उसे इस अंश में एकाएक आवेग मिलता है।दूसरे अंश में पवन की गति के मूल में वियोग तथा प्रयत्न है,जब कि इस अंश में दृष्टिगत गति के मूल में संयोग और भोग है।इस प्रकार संपूर्ण रचना में संपूर्ण रतिभाव व्यंजित होता है।साथ ही प्रेम की पूर्णता भी यहां दृष्टव्य है, जिसमें संयोग,वियोग,और भोग सब कुछ है।

उक्त रचना के अंतर्गत प्रथम तथा दूसरे अंश में,क्रमशः स्वप्न की मग्नता तथा स्मृति के उल्लेख द्वारा,शरीर-स्पर्श-संवेदना की अनुभूति का सूक्ष्म और प्रच्छन्न संकेत मिलता है।दूसरे अंश से वह संवेदनानुभूति शनैः शनैः अधिक स्पष्ट और स्थूल रूप धारण करने लगती है,और अंतिम अंश में विकसित होकर वह संवेदना भोग के रूप में परिणति और पूर्णता प्राप्त करती है।इसी प्रकार प्रथम अंश में संपूर्ण निष्क्रियता मिलती है।दूसरे अंश में एकाएक वेग के साथ ही कार्य आरंभ होता है।तीसरे अंश में कार्य एकाएक रुककर एकदम धीमी गति प्राप्त करता है।चौथे अंश में पुनः एकाएक वेग आकरसमस्त काव्य की परिणति ही कार्य में हो जाती है।इस प्रकार प्र-

क्रम-

१-निराला-प्रबंध प्रतिमा-पृष्ठ-२१५

प्रथम और तृतीय अंश में निष्क्रियता और द्वितीय तथा चतुर्थ अंश में सक्रियता की अनुभूति की तुल्यकक्षता दिखायी देती है।इसी प्रकार पहले और तीसरे अंश में वातावरण की स्तब्धता या स्थिरता तथा शान्ति,और दूसरे तथा चौथे अंश में आन्दोलित वातावरण की अनुभूति की तुल्यकक्षता भी दृष्टव्य है।

संक्षेप में उक्त तीनों अनुभूतियों के कलात्मक गुंफन द्वारा इस कविता में स्वतंत्र भाव के रूप में रति की व्यंजना हुई है ।

सरोज-स्मृति:-

निरालाजी ने इस कविता के सृजन में आद्योपान्त कवि-कर्मोचित अनासक्त वृत्ति का परिचय दिया है,और इस घोर वैयक्तिक शोकानुभूति को निर्वैयक्तिक भाव की स्थिति प्रदान कर दी है,फिर भी निरालाजी ने इस कविता को कभी कविता नहीं माना।क्योंकि वे सहृदय के रूप में इस कविता का कभी रसास्वाद नहीं कर सके।यह तथ्य उल्लेखनीय है कि निरालाजी ने अपनी अन्य प्रमुख कविताओं के समान इस कविता का कवि-सम्मेलनों या कवि-गोष्ठियों में पाठ नहीं किया।डा०शिवमंगलसिंहजी के कथनानुसार एक बार उनके द्वारा इस कविता के पाठ के लिये अत्यधिक आग्रह किये जाने पर निरालाजी अत्यन्त क्षुब्ध होकर कह उठे थे-'सुमन,वह कविता नहीं है'। परंतु सरोज-स्मृति को अकविता भी कदापि नहीं माना जा सकता।अतः यही कहना उचित होगा कि सरोज-स्मृति के सृजन-काल में निरालाजी दुष्कर कवि-कर्म का निर्वाह सफलतापूर्वक कर गये,परंतु सहृदय के रूप में वेउसका भोग करने में असमर्थ रहे,क्योंकि अन्ततः वे सरोज-स्मृति के स्रष्टा होने के अतिरिक्त सरोज के पिता भी थे ।

प्रस्तुत रचना को भावान्विति और अर्थान्विति के आधार पर ६ खंडों में विभक्त किया जा सकता है -

१- उनविंश पर--------------पथ पर दृष्टि टेक(अनामिका,११७-१२१
२- तू सवा साल की--------चढ़ी पूजा उनपर(अनामिका,१२१-१२२
३- याद है दिवस की----संचित टुकड़ों पर(अना:)
४- धीरे धीरे फिर बढ़ा चरण---- तू, समस्त में तेरा जीवन
५- सासु ने कहा---------स्नेह-प्राव(अनामिका,१२८-१३०)
६-खत लिखा----------तैरा तर्पण(अना:१३०-१३४)

इस खंड में`गीते मेरी`उद्बोधन महत्वपूर्ण है।इसके द्वारा सरोज की पवित्रता और बौद्धिक या मानसिक प्रौढ़ता तथा जीवन की मार्गदर्शिका या आधार होने की अनुभूति व्यंजित होती है।रचना के अंत में`भाग्यहीन की सम्बल`कहकर इसी तथ्य की पुष्टि की गई है। १८ अध्याय,सरोज के १८ वर्ष पूर्ण होने का संकेत देते हैं।गीता के १८ अध्यायोंको जीवन में चरितार्थ करने के पश्चात् जीवन की शाश्वत विराम के रूप में परिणति का उल्लेख,जीवन की उस परम उपलब्धि का संकेत देता है जिसे कवि ने `अमर वर`कहा है।इसके अतिरिक्त ११८ पृष्ठ पर`जीवित कविते` संबोधन से उसका गाया जाना(गीते), अथवा कविता या गीत को ही`गीते`कहकर संबोधित करना सार्थक दिखायी देता है।यहां`कविते`संबोधन द्वारा सरोज के व्यक्तित्व में निहित कविता के गुणों की व्यंजना हुई है।`गीते` और जीवित कविते दोनों संबोधन सरोज की श्रेष्ठता बताते हुए उसकी मृत्यु की करुणता को और अधिक गहन और गंभीर बनाते हैं।

करुणता की उक्त अनुभूति इन पंक्तियों द्वारा अभिव्यक्त संताप और अनुताप की अनुभूति से पुष्ट होती है-`धन्ये,मैं पिता निरर्थक था-----` यहां`निरर्थक`शब्द द्वारा विषाद की जो लहर आरंभ होती है वही संपूर्ण

रचना में कभी प्रच्छन्न कभी प्रकट रूप में बढ़ती हुई अंत में `दुख ही जीवन` (पृ१३४) की शिला पर टकराती है। `यह हिन्दी का स्नेहोपहार` पंक्तियों से करुणा और विषाद के विपरीत उत्साह की अनुभूति मिलती है, परंतु वह अधिक नहीं टिकती, और करुणाता का जो स्वर कुछ घट गया था - `अस्तु मैं उपार्जन को अक्षम` - से पुनः तीव्र बन जाता है।

इस प्रकार इस खंड में करुण की अनुभूति विषाद का कारण बनती है, और विषाद पूरक बनकर, आगे उसी का निर्वाह करता है। उत्साह की अनुभूति द्वारा करुणाता में कुछ अवरोध उत्पन्न होता है, परंतु यह अनुभूति यहां इतनी सशक्त नहीं कि करुणा को दबा दे।

२- तू सवा साल की------------चढ़ी पूजा उन पर

प्रस्तुत खंड वात्सल्य की अनुभूति से आरंभ होता है, यद्यपि `वह चरित पूर्ण कर चली गई` - पंक्ति द्वारा पत्नी की स्मृति, करुणाता का एक हल्का स्पर्श दे जाती है, परंतु वात्सल्य की धारा में कोई अवरोध उत्पन्न नहीं होता। परंतु `पिता निरर्थक`, `उपार्जन को अक्षम` - की पुष्टि करनेवाली इस पंक्ति द्वारा- `कवि जीवन में व्यर्थ भी व्यस्त` कारण विषाद को पोषण देनेवाली संताप और अनुताप की अनुभूति उभर आती है। प्रथम खंड में विषाद, करुणा की अनुभूति से उत्पन्न हुआ था, यहां वात्सल्य की अनुभूति कारण रूप दिखायी देती है। इस प्रकार प्रस्तुत खंड में वात्सल्य, विषाद और संताप का कारण होने के साथ यह भी दृष्टव्य है कि दोनों अनुभूतियां तुल्यबल होकर आई हैं।

३- याद है दिवस की------------संचित टुकड़ों पर

दूसरे खंड में जिस वात्सल्य की अनुभूति का आरंभ हुआ है उसका विशेष विस्तार इस खंड में हुआ है, और उत्साह की अनुभूति ने उसका निर्वाह किया है। वात्सल्य की भूमिका के रूप में, विवाह का आग्रह देखा जा सकता है।

परंतु इससे पूर्व भाग्य-अंक को खंडित करने की दृढ़ता प्रकट हुई है। 'मैं हुआ पुनः चेतन, सोचता हुआ विवाह बंधन' - मैं एक ओर पूर्ववर्ती दृढ़ता की आंशिक चेतना है, और शेष चेतना कदाचित विमाता के कोप और कटुता के फलस्वरूप बच्चों की हानि होने की है। परिणामस्वरूप सरोज के हाथ खेलने के लिये कुंडली देकर विवाह की निरर्थकता प्रमाणित की है। इस प्रकार प्रस्तुत खंड में वात्सल्य की अनुभूति का क्रमशः विस्तार मिलता है।

४- धीरे-धीरे फिर बढ़ा चरण ---- ढूं, सरोज में मेरा जीवन

तीसरे खंड में जिस वात्सल्य की अनुभूति का विकास और विस्तार देखा गया है, वह इस खंड में शृंगार की अनुभूति की प्रच्छन्न अन्तर्धारा के रूप में मिलती है।

यौवन का चरम रूप जिस शारीरिक गुण द्वारा प्रकट होता है उस 'लावण्य-भार' को केन्द्र बनाते हुए सरोज के यौवन का वर्णन किया गया है। इस वर्णन के अन्तर्गत लावण्य-भार तथा मालकोश और वीणा द्वारा दृक्-संवेदना और श्रुति-संवेदना दोनों को मिलाने का प्रयास किया गया है। 'नव-वीणा' द्वारा अधिक स्पष्टता यह मिलती है कि जैसे वीणा के तार-तार में वह राग तथा उसकी कोमलता झंकृत हो जाती है वैसे ही सरोज के शरीर के अंग-प्रत्यंग में लावण्य और कोमलता प्रकट हो रहे हैं। परंतु- 'कोमलता पर सस्वर' इस पंक्ति से उक्त शब्दों की व्यंजना दब गई है, और अर्थ फैल गया है। इस लावण्य के कंप का विस्तार देखकर उसके अत्यधिक सौंदर्य की कल्पना की जा सकती है। तारुण्य के विकास का आरंभ 'कंप' से किया गया है तथा वह 'नैश स्वप्न' और फूटी ऊषा जागरण' द्वारा क्रमशः विकसित होता हुआ देखा जा सकता है।

शरीर तथा दृष्टि के तारल्य एवं दृष्टि की गंभीरता को 'क्या दृष्टि-----साथ-साथ' - इन पंक्तियों द्वारा व्यक्त किया है। यहां 'बहुल--

`उमड़ता ऊर्ध्व सलिल` तथा `टलमल` शब्दों द्वारा शरीर के तारल्य का उमड़ कर ऊपर दृष्टि में टलमल होना दिखाया गया है।नीलाचन तारुण्य के अनुराग का संकेत करता है।परंतु इसके बाद पुनः पत्नी की स्मृति विषाद को उभारती है,और श्रृंगार के स्थान पर वात्सल्य की प्रच्छन्न अनुभूति प्रकट होती है तथा अंत में `जागा उर में तेरा प्रिय कवि`- से विषाद और वात्सल्य के स्थान पर पुनः श्रृंगार की अनुभूति छाने लगती है।

इस प्रकार उक्त खंड में श्रृंगार और वात्सल्य की अनुभूतियां परस्पर पूरक रूप में तो नहीं,परंतु अनुकूल या संवादी बनकर अवश्य व्यक्त हुई हैं।

५- सासु ने कहा-------------स्नेह-प्राव

इस खंड में `मैया अब नहीं हमारा बस, और `काम तुम्हारा धर्माचार` ये कथन विमूढ़ता,विषाद और असहायता की अनुभूतियों के लिये ~~कारण~~ कारणभूत हैं। `न अहो,न अहा`- इन शब्दों द्वारा व्यंजित मौन उक्त अनुभूतियों को प्रकट करता है।इन मौन अनुभूतियों को आली पंक्तियों में वाणी मिली है- - `ज्यों भिक्षुक लेकर,स्वर्ण झनक`।इसके बादकी पंक्तियों द्वारा फूटा हुआ व्यंग और रोष - उक्त अनुभूतियों की गहनता की परिणति है।अतः यहां विषाद और व्यंग की अनुभूतियां कार्य-कारण रूप में संतुलित होकर व्यक्त हुई हैं।परंतु विषाद और व्यंग से ही आगे उत्साह उद्भूत हुआ है,जिसे `खुल गया हृदय का स्नेह-प्राव` में देखा जा सकता है।

इस प्रकार उक्त खंड में- `ज्यों भिक्षुक लेकर स्वर्ण झनक`,ये कान्यकुब्ज-कुल-कुलांगार,`खुल गया हृदय का स्नेह-प्राव, इन पंक्तियों द्वारा क्रमशः विषाद,व्यंग,रोष और उत्साह की अनुभूतियां कार्य-कारण रूप में नियोजित हुई हैं,यथा- विषाद - व्यंग और रोष - उत्साह । `भिक्षुक` द्वारा

दीनता,असहायता,खेद तथा विषाद की व्यंजना,`कुलांगार` के रोष और आक्रोश को जितनी तीव्रता से उभारती है,`खुल गया हृदय---` में व्यंजित उत्साह ,उक्त दोनों अनुभूतियों को उतनी ही क्षमता से शान्त कर देता है।अत: यहां तीनों अनुभूतियों का संतुलित रूप देखा जा सकता है।

६- खत लिखा-------तेरा तर्पण

उक्त खंड का उत्साह यहां बना रहता है,परंतु चौथे खंड की तरह यहां भी वात्सल्य ,श्रृंगार की अनुभूति में अन्तर्निहित हो जाता है। चौथे खंड में विवाहपूर्व सरोज के सौन्दर्य का वर्णन किया था,यहां विवाहोपरान्त उसके श्रृंगार के अनुभावों का वर्णन किया गया है।वधु के रूप में सरोज पत्नी की स्मृति का कारण बनती है,तथा इस स्मृति द्वारा यहां श्रृंगार का पोषण होता है।परंतु पुन: वात्सल्य की अनुभूति इन पंक्तियों द्वारा प्रकट होती है-`वह शकुंतला-----`,और अंत में श्रृंगार तथा उससे उद्भूत वात्सल्य दोनों का करुणा में पर्यवसान होता है।`दुख ही जीवन की कथा रही `- यह पंक्ति करुणा की धारा में आवर्त के समान जैसे घूमती रहती है।अथवा विषाद,रोष,श्रृंगार,वात्सल्य की अनुभूतियां जैसे इस आवर्त में विलीन हो जाती हैं।`पिता निरर्थक` तथा `उपार्जन को अक्षम` द्वारा व्यक्त अनुभूतियां `भिक्षुक` शब्द को सार्थक करती हैं और इन तीनों का प्रसार`दुख ही जीवन की कथा रही----` में परिणति प्राप्त करता है।

इस प्रकार उक्त रचना द्वारा करुण की व्यंजना होती है। वात्सल्य और श्रृंगार के भाव प्रच्छन्न रूप से करुण के पोषक रूप में ही व्यंजित हुए हैं। अत: इस प्रकार इस रचना में मिश्र भावों की परस्पर पूरक रूप में व्यंजना हुई है।

६- उपसंहार ::

प्रबंध-काव्य के रूप में परम्परागत शास्त्रीय नियमों के आधार पर निरालाजी ने किसी महाकाव्य की रचना नहीं की। फिर भी वे एक-मुख से महाकवि स्वीकार किये गये। इसका मूल कारण यही माना जा सकता है कि `जुही की कली` से लेकर, मृत्यु से कुछ दिन पूर्व लिखी गई अंतिम रचना तक एक संपूर्ण महाकाव्य है। इस प्रकार समूचे निराला-काव्य को एक महाकाव्य माना जाय तो उसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। १

तीन कालखंड, इस महाकाव्य के तीन सर्ग हैं- परिमल सर्ग, कुकुरमुत्ता सर्ग, और अर्चना सर्ग। प्रत्येक सर्ग में विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग है परंतु उनकी अन्विति खंडित नहीं होती। भावानुकूलता की दृष्टि से संध्या रजनी, प्रात:, सूर्य, मध्याह्न, दिन, शैल, ऋतु, वन, सागर, संयोग, वियोग, मुनि, पुर, रण-प्रयाण, विवाह, मंत्रणा आदि का संपूर्ण महाकाव्य में वर्णन किया गया है।

इस महाकाव्य का प्रमुख भाव `भक्ति या प्रपत्ति` है, जो तीनों सर्गों में व्याप्त होकर अंतिम सर्ग में परिणत हुआ है। इस भाव को प्रधानता देने तथा पुष्ट करने में अन्य अनुभूतियां निम्नलिखित रूप में कारणभूत मानी जा सकती हैं।

सुख-दुखात्मक अनुभूतियों द्वारा जीवन और जगत की एकान्त व अस्थिरता तथा असारता प्रकट होने के कारण सर्वव्यापी, शाश्वत तथा सरस वस्तु के प्रति आकर्षण एवं आस्था अधिक दृढ़ होती दिखाई देती है। अत: ये अनुभूतियां भक्ति-भाव की संवादी तथा पोषक कही जा सकती हैं, यथा-

हार गया जीवन-रण,
छोड़ गये साथी-जन ;
एकाकी, नैश-क्षण ,
कण्टक-पथ, विगत पाथ ।
देखा है, प्रात किरण, फूटी है मनोरमण,

हार गया जीवन-रण, छोड़ गये साथी जन,
एकाकी, नैश-क्षण, कण्टक-पथ विगत पाथ।
देखा है, प्रात किरण, फूटी है मनोरमणा,
कहा तुम्हीं को अशरण-शरण, एक तुम्हीं साथ।[1]

प्रथम सर्ग या कालखंड की प्रमुख अनुभूति 'प्रेम', तथा तीसरे कालखंड की प्रमुख अनुभूति 'प्रकृति' द्वारा काव्यत्व का निर्वाह हुआ है, तथा स्निग्धता बनी रहती है, अन्यथा भजनों का निर्माण होता, तथा निरालाजी कवि न बनकर कीर्तनकार बन जाते। इसके अतिरिक्त इन अनुभूतियों द्वारा अभिव्यक्त सृष्टि और संसार का भोग पूर्वलिखित शोक को संतुलन प्रदान करता है तथा प्रेम और प्रकृति के बाह्य रूप को प्रकट कर उसके वास्तविक अंतरंग ईश्वरीय रूप को स्पष्ट करता है। इस प्रकार ये अनुभूतियां भक्ति-भाव की समतोल सिद्ध होती हैं।

जागरण तथा करुणा की अनुभूतियां रचनात्मक (constructive) हैं। इनके द्वारा व्यंजित जन-सेवा तथा राष्ट्रसेवा की अनुभूति, मनुष्य मात्र में ईश्वरीय अंश के अस्तित्व का विश्वास प्रकट करती है, तथा आत्मा के विस्तार द्वारा भक्ति-भाव की व्यापकता का संकेत करती है। इसके अतिरिक्त पुरुषार्थ द्वारा अंधकार के परे जाकर ज्योति अथवा ज्ञान द्वारा प्रिय अथवा इष्ट के साक्षात्कार का निर्देश भी जागरण की अनुभूति में मिलता है-

करना होगा यह तिमिर पार -
देखना सत्य का मिहिर द्वार -
बहना जीवन के प्रखर ज्वार में निश्चय-

1- निराला-अर्चना-पृष्ठ-२२

लड़ना विरोध से द्वन्द्व-समर,
रह सत्य-मार्ग पर स्थिर निर्भर -
जाना, भिन्न भी देह, निज घर नि:संशय।[१]

अत: ये अनुभूतियां संवादी रूप में भक्ति-भाव की वृद्धि करती है ।

परंतु रचनात्मक कार्य में लीन होने पर भी सामाजिक परिवेश की विषमता तथा जड़ता का अनुभव ढीलेपन के स्थान पर अधिक उद्दाम तथा विद्रोही अनुभूति को जन्म दिया है। परंतु इस प्रकार का असन्तोषजन्य कार्य अधिक मानसिक अशान्ति का निर्माण करता है, जिसके फलस्वरूप एकमात्र भक्ति द्वारा ही शान्ति प्राप्त करने का प्रयास दिखाई देता है। उक्त अनुभूति मूलत: विरोधी होती हुई भी भक्ति-भाव का पोषण करती है।

उपरोक्त समस्त विशेषताओं के संदर्भ में विचार करने पर स्पष्ट होगा कि तुलसीदास इस महाकाव्य का चरम है। इस रचना में प्रेम और प्रकृति के भोग से भक्ति में संक्रमण का मूल कारण सामाजिक मर्यादा तथा व्यवस्था की रक्षा का भाव ही है। अत: भक्ति-भाव को अंतिम परिणति के रूप में तथा अन्य अनुभूतियों को भक्ति की संवादी, सम या विवादी रूप में प्रस्तुत करती हुई यह रचना महाकाव्य के बिलकुल मध्य में स्थित है। इसमें एक ओर जीवन के भूत और भविष्य दोनों की व्यंजना है, तो दूसरी ओर निराला-महाकाव्य के तीनों सर्गों का (अर्थात् तीन कालखंडों) समन्वय भी मिलता है।

~~उपरोक्त समस्त विशेषताओं के संदर्भ में विचार करने पर स्पष्ट होगा कि तुलसीदास~~ आशय यह कि चिन्तन या दर्शन ने भक्ति को आधार प्रदान किया है। सामाजिक असंतोष तथा पारिवारिक शोक की अनुभूतियों से उत्पन्न सांसारिक कटुता तथा जीवन की क्षणभंगुरता ने उक्त

---

१ निराला- तुलसीदास-छन्द-३५

भक्ति को अधिक पुष्ट किया है। जीवन के अनुभव ने यह प्रमाणित किया है कि अंतिम शान्ति या प्राप्ति, ईश्वर का स्नेह पाने के पुरुषार्थ में है। आशय यह कि बौद्धिक चेतना द्वारा प्रदत्त ज्ञान, जीवन का अनुभव, तथा कर्म का पुरुषार्थ- तीनों ने निरालाजी की अंतरंग चेतना को भक्ति पर लाकर केन्द्रित कर दिया है। भारत में ज्ञान, भक्ति और कर्म की कहीं कहीं पृथक् रूप में श्रेष्ठता का वर्णन है परंतु गीता में तीनों के समाहार का प्रयास है। इसी प्रकार का समाहार निरालाजी के काव्य में भी सम्पन्न हुआ है। निरालाजी की भक्ति चिन्तन पर आधारित है, तथा कर्म द्वारा पुष्ट है। जीवन में उन्होंने जो ज्ञान अर्जित किया तथा जिसका भोग किया, उसने सम्मिलित रूप में भक्ति को दृढ़ करने का प्रयास किया। अतः इस महाकाव्य में बौद्धिक, आत्मानुभावात्मक, तथा विद्रोहात्मक अनुभूतियों ने भक्ति-भाव का पूर्ण रूप प्रस्तुत किया है। परस्पर पूरक रूप में निम्नलिखित त्रिकोणों द्वारा उक्त विवेचन स्पष्ट किया जा सकता है ---

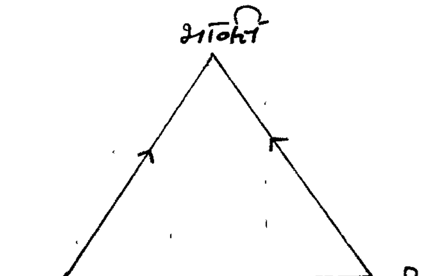

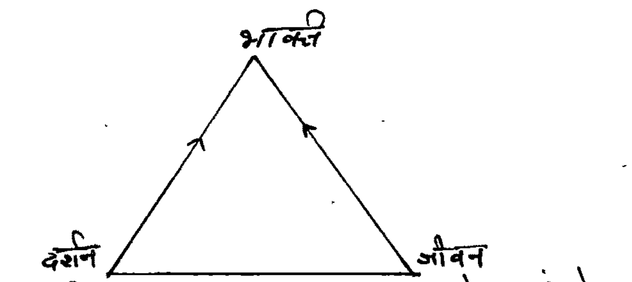

इस प्रकार निरालाजी की उपरोक्त भाव-कला के संदर्भ में अगले अध्याय में उनके कला-शिल्प का अध्ययन एवं विवेचन किया जा रहा है।